शुकनासोपदेश

रामनारायणलाल अरुण कुमार
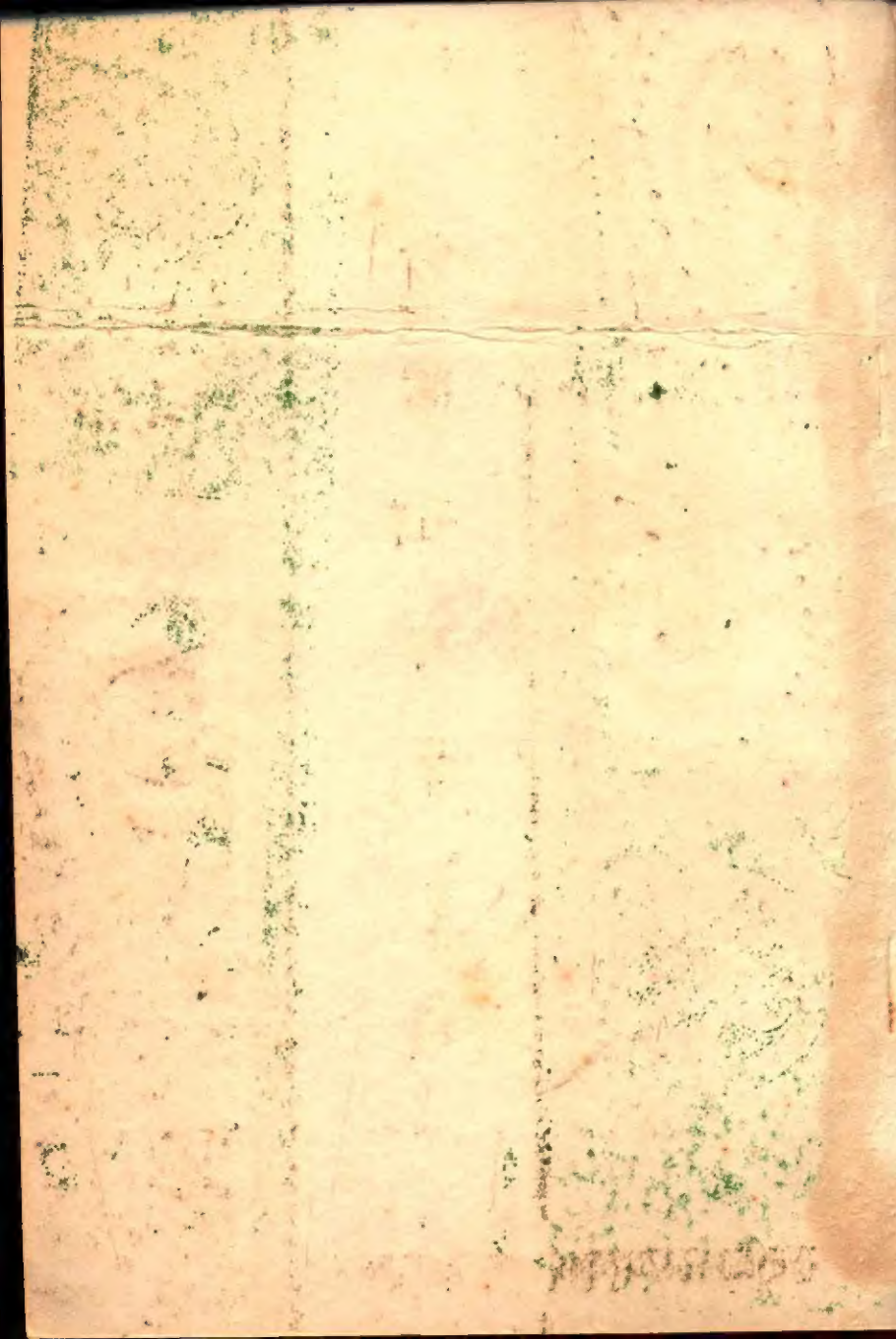
महाकविबाणभट्टप्रणीत

कादम्बरी

से उद्धृत •

शुकनासोपदेश

• संस्कृत टीका • हिन्दी अनुवाद

• विस्तृत टिप्पणी • बृहत् भूमिका

व्याख्याता

तारिणीश झा

व्याकरण-वेदान्ताचार्य

चतुर्थ संस्करण

रामनारायणलाल अरुणकुमार

प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता

२ कटरा रोड, इलाहाबाद - २११००२.

२००५

परिचायिका

कादम्बरी और शुकनासोपदेश

कादम्बरी एक प्रेमाख्यान है। इसमें कादम्बरी और चन्द्रापीड तथा महाश्वेता और पुण्डरीक इन दोनों युगलों के प्रेम का वर्णन है। एक शाप के कारण मुनिकुमार पुण्डरीक का स्वर्गवास हो जाता है और वह चन्द्रापीड का मित्र होकर वैशम्पायन नाम से उत्पन्न होता है। दैवगति से दोनों मित्रों का निधन हो जाता है और चन्द्रापीड राजा शूद्रक के रूप में तथा वैशम्पायन उसी नाम से तोते के रूप में जन्म लेते हैं।

कादम्बरी और महाश्वेता सखियाँ हैं। कादम्बरी का चन्द्रापीड से और महाश्वेता का पुण्डरीक से प्रेम होता है। दोनों मित्रों की मृत्यु के उपरान्त आकाशवाणी के यह कहने पर कि उनका अपने प्रेमियों से पुनर्मिलन होगा दोनों सखियाँ तपस्या करती हैं। एक दिन तोता वैशम्पायन राजा शूद्रक की सभा में लाया जाता है और वह पूर्व जन्म की सारी बातें, जो उसने जाबालि ऋषि से सुनी थीं, राजा को बता देता है। अनन्तर शूद्रक चन्द्रापीड और तोता पुण्डरीक के रूपों में परिणत हो जाते हैं। ये दोनों अपनी प्रियाओं से मिलते ह और इनका विवाह-समारोह विशेष आयोजन के साथ संपन्न होता है।

कादम्बरी के रचयिता महाकवि बाणभट्ट हैं। जो इसको पूर्वार्ध तक ही लिख पाये थे कि काल के निर्दय हाथों ने उन्हें सहसा संसार से उठा लिया। तब उत्तरार्ध की रचना उनके सुयोग्य पुत्र भूषणभट्ट ने की। पूर्वार्ध में जो उच्चकोटि की शैली अपनाई गई थी उसका निर्वाह उत्तरार्ध में भी बड़ी कुशलता और सफलता के साथ किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक 'शुकनासोपदेश' इसी कादंबरी आख्यान के पूर्वार्ध से संगृहीत एक प्रकरणमात्र है। इसमें चन्द्रापीड के पिता तारापीड के महामन्त्री शुकनास ने चन्द्रापीड के यौवराज्याभिषेक के समय उसको विविध प्रकार के उपदेश

देते हुए विद्वान्, महापराक्रमी, कुलीन, धैर्यशील और उद्यमी पुरुष को भी दुर्जन बना देने वाली लक्ष्मी से सदा सावधान रहने के लिए विशेष रूप से समझाया है।

बाणभट्ट का जीवन-वृत्त, समय और कृतित्व

महाकवि बाणभट्ट का जन्म शोणनद के पश्चिमी तट पर प्रीतिकूट नामक ग्राम में हुआ था। शोण मध्य प्रदेश की पर्वतमालाओं से निकलकर आधुनिक शाहाबाद (आरा) जिले को बायें तथा गया को दाहिने बनाता हुआ पटना के समीप मनेर नामक स्थान पर गंगा में मिल जाता है। प्रीतिकूट संभवतः आधुनिक शाहाबाद जिले में रहा होगा।

बाण के पूर्वज वत्स नाम के ऋषि थे, जो कदाचित् महर्षि भृगु के पुत्र च्यवन के पुत्र थे। वत्स के कारण ही उनके वंश का आगे चलकर वात्स्यायन नाम पड़ा। इसी वंश में कुबेर नाम के एक विद्वान् और धार्मिक ब्राह्मण उत्पन्न हुए। उनके पुत्र पशुपति हुए और पशुपति के पुत्र अर्थपति के ग्यारह पुत्र हुए। जिनमें से अष्टम पुत्र चित्रभानु की राजदेवी नामक भार्या में कविकुलशिरोमणि बाण का जन्म हुआ। बाण के बचपन में ही उनके माता का स्वर्गवास हो गया। माता के अभाव में पिता ने ही इनका लालन-पालन किया। परन्तु बाण के चौदह वर्ष के होते-होते पिता का भी देहान्त हो गया। इस समय बाण ने शास्त्र-पुराणों का पर्याप्त अध्ययन कर लिया था। पिता की मृत्यु के बाद बाण के हृदय में विभिन्न देशों के देखने की तीव्र लालसा उठी। इसी से प्रेरित होकर उन्होंने देशाटन करना प्रारम्भ कर दिया। उनकी इस यात्रा में उनके अनेक अनुयायी भी थे। जिनमें पण्डित, कवि, चित्रकार, लेखक, गायक, सुवर्णकार, जौहरी, वैद्य, नर्तक, गायक और अभिनेता आदि सभी प्रकार के लोग थे।

देश-भ्रमण से लौटने पर एक दिन बाण अपराह्नकाल में भोजनादि समाप्त करके बैठे हुए थे। उसी समय कान्यकुब्जेश्वर सम्राट् हर्षवर्धन का एक दूत आया। उसने राजसभा में उपस्थित होने के लिए बाण से निवेदन किया। जब बाण राजसभा में पहुँचे तो हर्षवर्धन ने उन्हें देखकर

मुँह फेर लिया और कहा 'यह भुजंग आया है ।' बाण इस अपमान से विचलित नहीं हुए, प्रत्युत वहाँ के अनेक धुरन्धर विद्वानों से शास्त्रार्थ करके अपनी धाक जमा ली। पश्चात् राजा उनकी विद्वत्ता से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें प्रधानाचार्य के पद पर नियुक्त कर दिया। राज-सम्मान प्राप्त करने के कई वर्ष बाद वे घर लौटे और सुखपूर्वक रहने लगे। बाण ने हर्षचरित में अपने विषय में ये बातें लिखी हैं। उसके बाद के जीवन के विषय में और कुछ ज्ञात नहीं है।

हमें यह तो एक ऐतिहासिक तथ्य के रूप में पता है कि बाण को राज्याश्रय देने वाले महाराज हर्ष ६०६ ई० से ६४८ ई० के बीच हुए। क्योंकि प्रसिद्ध चीनी बौद्ध यात्री ह्वेनसांग सन् ६२६ ई० से ६४५ तक भारत में रहा। उसने अपने भारत-यात्रा-वर्णन के प्रसंग में उत्तरी भारत के सम्राट् हर्षवर्धन का सविस्तार वर्णन किया है। उस वर्णन का मिलान जब हम बाण के महाराज हर्षविषयक वर्णनों से करते हैं तो इसमें सन्देह की कोई संभावना नहीं रह जाती कि ह्वेनसांग द्वारा उल्लिखित हर्षवर्धन वही राजा था, जिसने बाण को राज्याश्रय दिया था और जिसे उन्होंने अपनी रचना के द्वारा बाद में अमर कर दिया था। इस प्रकार बाण हर्षवर्धन (६०६ ई० से ६४८ ई०) के समकालीन थे और हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि वे ईसा की छठी शताब्दी के अंतिम भाग और सातवीं शताब्दी के आरंभ में अवश्य रहे होंगे।

इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनसे हम इसी निर्णय पर पहुँचते हैं। इनमें से मुख्य प्रमाण यह है कि ८वीं शताब्दी से १२वीं शताब्दी के बीच होने वाले कतिपय लेखकों ने बाण और उनके ग्रन्थों का उल्लेख किया है। जैसे ८वीं शताब्दी में उत्पन्न वामन ने काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में बाण की कादम्बरी की एक पंक्ति—'अनुकरोति भगवतो नारायणस्य' उद्धृत करते हुए लिखा है—'मन्ये, स्मशब्दः कविना प्रयुक्तो लेखकैस्तु प्रमादान्न लिखितः'। नवमशताब्दी के उत्तरार्ध में कश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा की सभा में रहने वाले आनन्दवर्धनाचार्य ने अपने ध्वन्यालोक में कादम्बरी और हर्षचरित के

नाम कई बार लिये है। तदनन्तर कादम्बरीसार के रचयिता आनन्द का नामोल्लेख करते हुए क्षेमेन्द्र ने अपन सुवृत्ततिलक नामक ग्रन्थ में लिखा है— **'अनुष्टुप्सततासक्ता साभिनन्दस्य नन्दिनी। विद्याधरस्य वदने कुलिकेव प्रभावभूः ॥'** ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में होने वाले भोजराज की कृति सरस्वतीकण्ठाभरण में यह पद्यार्ध मिलता है—**'यादृग्गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः ।।'** ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कश्मीरी पण्डित क्षेमेन्द्र ने अपनी औचित्यविचारचर्चा नामक पुस्तक में कादम्बरी के दो श्लोकों— **'स्तनयुगमश्रुस्नातम्'** और **'जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतः'**—का उदाहरण दिया है। बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में रुय्यक ने हर्षचरित पर वार्तिक की रचना की है तथा अपने अलंकारसर्वस्व में **'यस्तपोवनमिति मुनिभिः'** इत्यादि हर्षचरित के गद्य का उदाहरण दिया है।

महाकवि बाण की पाँच कृतियाँ प्रसिद्ध हैं—हर्षचरित, कादम्बरी, पार्वतीपरिणय, चण्डीशतक और मुकुटताडितक। हर्षचरित आठ उच्छ्वासों में लिखा गया है। शब्द और अर्थ दोनों की दृष्टि से यह एक उत्तम ग्रन्थ है। इसके प्रारम्भ में स्वयं बाण ने अपने वंश का विशद वर्णन किया है। अगले उच्छ्वासो में उन्होंने हर्ष के वंश के आदिपुरुष पुष्पभूति का उल्लेख करते हुए प्रभाकरवर्धन का जीवन, हर्ष तथा उसके बड़े भाई राज्यवर्धन और उसकी छोटी बहन राज्यश्री की उत्पत्ति एवं विकास का वर्णन किया है। राज्यश्री का विवाह मौखरी राजा ग्रहवर्मा के साथ हुआ था। प्रभाकरवर्धन के निधन के बाद मालवा के राजा ने ग्रहवर्मा का वध कर दिया था। अतएव राज्यवर्धन ने मालवा के राजा पर आक्रमण करके उसको मार डाला, किन्तु मार्ग में गौड़ राजा ने उसके शिविर में ही धोखे से उसकी हत्या कर दी। हर्ष ने गौड़ राजा के विरुद्ध प्रस्थान किया; किन्तु मार्ग में उसने राज्यश्री के अज्ञात स्थान पर चले जाने का समाचार सुनकर उसको ढूँढ़ा और उसको ग्रहवर्मा के मित्र एक बौद्ध संन्यासी के निरीक्षण में रखकर गौड़ राजा की ओर चल दिया। यह कथा अपूर्ण रूप से यहीं पर बाण ने समाप्त कर दी है। ऐतिहासिक दृष्टि से हर्षचरित का बहुत अधिक महत्व है। इससे बाण के पूर्ववर्ती कवियों का समय निर्धारण करने में बड़ी सहायता मिलती है। इसके प्रारम्भिक श्लोकों

में निम्नलिखित कवियों और ग्रन्थों का उल्लेख है—वासवदत्ता, भट्टार हरिचन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेन, भास, कालिदास, बृहत्कथा और आढ्यराज।

दूसरी रचना कादम्बरी है। प्रचीन भारतीय वाङ्मय में गुणाढ्य की बृहत्कथा तथा सुबन्धु की वासवदत्ता के पश्चात् यह अपने ढङ्ग की तीसरी किन्तु अनूठी पुस्तक है। यह आख्यायिका ग्रन्थ है। आधुनिक शब्दों में इसे उपन्यास कहा जा सकता है। कादम्बरी भाव, भाषा और शैली सभी दृष्टि से हर्षचरित से उत्कृष्ट है। अतएव यह उचित ही कहा गया है कि कादम्बरी के रसज्ञों को भोजन भी अच्छा नहीं लगता—'कादम्बरीरसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते।'

कादम्बरी में चन्द्रापीड अनुकूल धीरोदात्त नायक है और कादम्बरी विवाह से पूर्व परकीया मुग्धा नायिका है; किन्तु विवाह के पश्चात् (उत्तरार्ध में) वह स्वकीया मध्या नायिका हो जाती है। इसके पूर्वार्ध में तथा उत्तरार्ध के कुछ भागों में पूर्वरागरूप और उत्तरार्ध में करुणरूप विप्रलम्भ शृंगार प्रधान रस है। कहीं संभोग शृंगार भी है। यत्र-तत्र करुण और हास्य आदि दूसरे रस भी पाये जाते हैं। इसमें माधुर्य गुण अधिकता से दृष्टिगोचर होता है, किन्तु कहीं-कहीं प्रसाद गुण भी है। 'शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरुच्यते' इस नियम के अनुसार इसमें पाञ्चाली रीति की बहुलता है, किन्तु गौडी आदि अन्य रीतियाँ भी यथासंभव मिलती ही हैं।

तीसरी कृति पार्वतीपरिणय एक नाटक है। इसकी कथा का कालिदास के कुमार संभव की कथा से कुछ साम्य है। जैसा कि इसके नाम से ही प्रकट होता है, इसमें भगवान् शिव तथा पार्वती का विवाह वर्णित है। इसकी प्रस्तावना में लिखा है—'अस्ति कविसार्वभौमो वत्सान्वयजलधिकौस्तुभो बाणः। नृत्यति यद्रसनायां वेधोमुखलासिका वाणी॥' कुछ लोगों के अनुसार पार्वतीपरिणय का रचयिता १७वीं शताब्दी में होने वाला बाणभट्ट नामधारी कोई दाक्षिणात्य कवि है। किन्तु इसके पक्ष नें कोई प्रबल प्रमाण प्राप्त नहीं होता है।

चौथी कृति चण्डीशतक सौ श्लोकों का संग्रह-ग्रन्थ है। इसमें भगवती चण्डिका की स्तुति की गई है। इसका प्रवाह अत्यन्त सुन्दर है और शब्दावली

देखने ही योग्य है। भोजराज ने सरस्वतीकण्ठाभरण में इसका एक पद्य उद्धृत किया है—

'विद्राणे रुद्रवृन्दे सवितरि तरले वज्रिणि ध्वस्तवज्रे
जाताशङ्के शशाङ्के विरमति मरुति त्यक्तवैरे कुबेरे।
वैकुण्ठे कुण्ठितास्त्रे महिषमतिरुषं पौरुषोपघ्ननिघ्नं
निर्विघ्नं निघ्नती वः शमयतु दुरितं भूरिभावा भवानी॥

—चण्डीशतकम् ६६

यह ग्रन्थ किन विशेष परिस्थितियों में लिखा गया, इस सम्बन्ध में एक किंवदन्ती है—एक बार कवि मयूर, जो बाण के समकालीन थे, कोढ़ से ग्रस्त होने पर सूर्य की स्तुति के रूप में सौ श्लोकों का सूर्य-शतक नामक ग्रन्थ बनाकर रोग से मुक्त हो गये। इस पर तीक्ष्णप्रतिभाशाली बाण को अत्यन्त ईर्ष्या हुई। फिर क्या था, उन्होंने अपना अंग-भंग कर डाला और चण्डी या दुर्गा देवी की स्तुति में चण्डीशतक की रचना करके पुनः स्वस्थ हो गए।

बाण की पांचवीं कृति मुकुटताडितक नामक एक नाटक माना जाता है। यद्यपि अब यह अप्राप्य है, किन्तु नलचम्पू की एक टीका में एक स्थान पर यह लिखा है—'यदाह मुकुटताडितकनाटके बाणः'। फिर वहीं मुकुटताडितक का यह श्लोक भी ऊद्धृत किया है—

'आशाः प्रापितदिग्गजा इव गुहाः प्रध्वस्तसिंहा इव
द्रोण्यः कृत्तमहाद्रुमा इव भुवः प्रोत्खातशैला इव।
विभ्राणाः क्षयकालरिक्तसकलत्रैलोक्यकष्टां दशां
जाताः क्षीणनहारथाः कुरुपतेर्देवस्य शून्याः सभाः॥'

इससे सिद्ध होता है कि मुकुटताडितक भी बाण की रचना है, जो काल-कवलित हो जाने से स्मृतिमात्रावशेष बन गया है।

बाणभट्ट की शैली

बाणभट्ट की शैली अत्यन्त प्रभावशालिनी और ओजस्विनी है। वे भाव के अनुसार ही शैली को अपनाते हैं। उन्होंने केवल अतिप्रचलित उपमा,

रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का ही प्रयोग नहीं किया है, अपितु अप्रचलित विरोधाभास, आक्षेप, परिसंख्या, वक्रोक्ति आदि अलंकारों का भी बड़ी सफलता के साथ प्रयोग किया है। समासों का अस्तित्व गद्यशैली की प्रमुख विशेषता मानी जाती है—'**ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्। काव्यादर्श १, ८०।**' सो समासों का जमघट लगा देने में बाण ने कमाल दिखलाया है। उदाहरण के लिए उनके एक ही वाक्य का कुछ अंश देखिये—

'.........**कोमल-मलय-मारुतावतार-तरङ्गितानङ्ग-ध्वजांशुकेषु, नवकलित कामिनी-गण्डूष-सीधु-सेक-पुलकित-व केषु, मधुकर-कुल-कलङ्ककाली-कृत-कालेयक-कुसुम-कुड्मलेषु, अशोक-तरु-ताडना-रणित-रमणी-मणि-नूपुर-झङ्कार-सहस्र-मुखरेषु, विकसन्मुकुल-परिमल-पुञ्जितालिजाल मञ्जु-शिञ्जित-सुभग-सहकारेषु, अविरल-कुसुम-धूलि-वालुका-पुलिन-धवलित-धरातलेषु, मधु-मद-विडम्बित-मधुकरी-कदम्बक-संवाह्यमान-लता-दोलेषु, उत्फुल्ल-पल्लव-लवली-लीयमान-मत्त-कोकिलोल्लासित-मधु-शीकरोद्दाम-दुर्दिनेषु, प्रोषित-जन-जाया-जीवोपहार-हृष्ट-मन्मथास्फालित-चाप-रव-भय-स्फुटित-पथिक-हृदय-रुधिरार्द्रीकृत-मार्गेषु, अविरत-पतत्कुसुम-शर-पतत्रि-पत्र-सूत्कार-बधिरीकृत-दिङ्मुखेषु, दिवापि प्रवृत्तान्तर्मदन-रागान्धाभिसारिका-सार्थ-सङ्कुलेषु, उद्वेल-रति-रस-सागर-पूर-प्लावितेषु, सकल-जीव-लोक-हृदयानन्द-दायकेषु, मधुमास-दिवसेषु**..........'

—कादम्बरी पूर्वार्ध

बाण का शब्दकोष असाधारण रूप से विशाल है। उन्होंने जिस प्रकार समासबहुल लंबे-लंबे वाक्यों का प्रयोग किया है उसी प्रकार समासरहित छोटे-छोटे वाक्यों के प्रयोग में भी कौशल दिखाया है—

'..........न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। न सत्यमनुबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणीकरोति..........'।

—शुकनासोपदेश

कुछ अभारतीय लेखकों ने बाण की रचना-शैली की कटु आलोचना करते हुए इसे अत्यन्त दुरूह माना है। किन्तु बाण की रचना उन्हीं के लिए दुरूह या भयावह है, जिन्होंने संस्कृत साहित्य का पूर्ण रूप से अध्ययन नहीं किया है। अतएव बाण के ग्रन्थों का रसास्वाद न लेने में पाठक की अनभिज्ञता ही कारण है, न कि बाण की रचना-शैली। भारतीय लेखकों ने बाण की शैली, योग्यता और गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। आर्यासप्तशतीकार गोवर्धनाचार्य ने बाण को पुरुषरूपधारिणी सरस्वती कहकर उनका सम्मान किया है। श्री चन्द्रदेव नामक विद्वान् ने बाणभट्ट को साहित्य-कानन में विचरण करने वाला सिंह कहकर समादृत किया है। इस प्रकार महाकवि बाण के प्रशंसक त्रिविक्रम, धनपाल, धर्मदास, सोड्ढल, सोमेश्वर आदि अनेक विद्वान् हुए हैं।

बाण का साहित्य पांचाली रीति का है। इनकी कविता के सामने अन्य कवियों की पद-रचना को त्रिलोचन कवि ने चपलतामात्र माना है—

'शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरुच्यते।
शिलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि॥'
'हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः।
भवेत् कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम्॥'

बाण की भाषा का प्रवाह अविच्छिन्न और ऊर्जस्वल है। उनका वर्णन साकार और सजीव है। वस्तु स्थिति का चित्र खींचने में वे किसी भी चित्रकार से आगे बढ़े हैं। उनका लोक-पर्यवेक्षण अपने ढंग का है। वक्रोक्ति में भी वे सिद्धहस्त हैं। गद्य काव्य कवि-प्रतिभा का निकषोपल (कसौटी) माना जाता है। गद्य कवियों में बाण का स्थान सबसे ऊँचा है। बाण ने गद्य काव्य के लिए जो उच्च स्तर प्रस्तुत किया है, उसके कारण उनसे पूर्ववर्ती कतिपय गद्य-साहित्य के ग्रन्थ लुप्त हो गये हैं। निदर्शन के लिए बाण के कुछ गद्यों पर दृष्टिपात कीजिए—

स खलु धर्मबुद्ध्या विषलतावनं सिञ्चति, कुवलयमालेति निस्त्रिंशलतामालिङ्गति, कृष्णागुरुधूमलेखेति कृष्णसर्पमवगूहते, महारत्नमिति ज्वलन्त-

गङ्गारमभिमृशति, मृणालमिति दुष्टवारणहस्तमुपलमुन्मूलयति, मूढो विषयोपभोगेष्वनिष्टानुबन्धिषु यः परिपातविरसेषु सुखबुद्धिमारोपयति ।'

—कादम्बरी (पुण्डरीक के प्रति कपिञ्जल के उद्बोधन-प्रसंग में)

× × ×

'यत्र च महाभारते शकुनिवधः, पुराणे वायुप्रलपितं, वयः परिणामे द्विज-पतनम्, उपवनचन्दनेषु जाड्यम्, अग्नीनां भूतिमत्वम्, एणकानां गीतव्यसनं, शिखण्डिनां नृत्यपक्षपातः, भुजङ्गमानां भोगः, कपीनां श्रीफलाभिलाषः मूला-नामधोगतिः ।'

—कादम्बरी (जाबालि-आश्रम-वर्णन-प्रसंग में)

बाण का सूक्ष्म-निरीक्षण

महाकवि ने अपने काव्यों में प्रकृति-सुन्दरी और मानव-प्रकृति दोनों का अत्यन्त सूक्ष्म-निरीक्षण प्रस्तुत किया है। उनका प्रकृति-चित्रण अनुपम है। वे प्रकृति के मंजुल और भयंकर दोनों प्रकार के स्वरूपों का अंकन करने में सिद्ध-हस्त हैं। प्रकृति-सौन्दर्य के तो वे पुजारी ही हैं। सूर्योदय और चन्द्रोदय, सन्ध्या और विभावरी, हिमाच्छादित हिमगिरि के उत्तुङ्ग शृंगों के सुन्दर दृश्यों और निर्मल अच्छोद सर की मनोरमता आदि का बड़ा ही सुन्दर एवं अद्भुत वर्णन हमें कादम्बरी में मिलता है। इसके साथ ही विन्ध्याटवी के भयावह दृश्यों का चित्रण भी बाण ने उतनी ही सफलता के साथ किया है। देखिए—

'......नखमुखलग्नेभकुम्भमुक्ताफललुब्धैः, शबरसेनापतिभिरभिहन्य-मानकेशरिशता प्रेताधिपनगरीव सदासन्निहितमृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च, समरोद्यतपताकिनीव बाणासनरोपितशिलीमुखा विमुक्तसिंहनादा च, कात्या-यनीव प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्दनालङ्कृता च कर्णीसुतकथेव सन्निहित-विपुलाचला शशोपगता च कल्पान्तप्रदोषसन्ध्येव प्रनृत्यन्नीलकण्ठा पल्लवारुणा च............... ।'

यद्यपि प्रकृति-वर्णन करने में बाण ने पाठकों के सामने उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, परिसंख्या आदि अलंकारों का स्तूप खड़ा करके वर्ण्यविषय की अभिव्यंजना की है और कभी-कभी इन अलंकारों की छटा में वर्ण्य विषय भी ढक-सा जाता है, परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता कि बाण ने प्रकृति के वास्तविक सौन्दर्य का वर्णन ही नहीं किया है। उन्होंने आलम्बन रूप में भी प्रकृति का वर्णन किया है और उसके दृश्यों की सुन्दर झांकी हमें दिखाई है। देखिए विन्ध्याटवी के एक मनोरम दृश्य का चित्रण—

'.........प्रतिविकचधवलकुसुमनिकरमत्युच्चतया तारकागणमिव, शिखर-प्रवेशासंलग्नमुद्वहद्भिः पादपैरुपशोभिता.........'।

कादम्बरी-कथा का स्रोत

बृहत्कथासरित्सागर के उनसठवें तरंग के मकरन्दिका-वृत्तान्त का अवलम्बन लेकर बाणभट्ट ने कादम्बरी कथा की रचना की है। यद्यपि कादम्बरी के उत्तरार्ध में बाणपुत्र भूषणभट्ट में बहुधा भिन्न वृत्तान्त का उल्लेख किया है किन्तु पूर्वार्ध में वैसी बात नहीं है। जैसे, कादम्बरी-पूर्वार्ध के अन्तर्गत विन्ध्याटवी के वर्णन में बाण ने लिखा है—'कर्णीसुतकथेव सन्निहितविपुलाचला, शशोपगता च'। इसका मूलभूत पाठ बृहत्कथा में मकरन्दिकोपाख्यान के अन्तर्गत इस प्रकार है—'कर्णीसुतः कटकः स्तेयशास्त्रप्रवर्तकः। ख्यातौ तस्य सखायौ द्वौ विपुलाचलसंज्ञकौ ।। शशो मंत्रिवरस्तस्य'। फिर जाबालिआश्रम के वर्णन में किम्पुरुषाधिराज्यमिव मुनिजनगृहीतकलशाभिषिच्यमानद्रुमम्' यह कादम्बरी का पाठ है और यही बृहत्कथा में 'पुरा मुनयः किन्नरराज्ये द्रुमनामकन्नृपम-भिषेचयामासुः' इस प्रकार पठित है। यहाँ आश्रम-पक्ष में द्रुम का अर्थ वृक्ष और राज्य-पक्ष में तन्नामक राजा समझना चाहिए। इसी तरह 'प्रलयानल-शिखाकलपकपिलजटाभारभ्रान्तसुरसिन्धुरन्धकारातिर्भगवानुत्सृष्टकैलासवास — प्रीतिर्महाकालाभिधानः स्वयं निवसति' यह वाक्य कादम्बरी के उज्जयिनी-वर्णन में पठित है और इसी का पाठ कथासरित्सागर में 'यस्यां वसति विश्वेशः महाकालवपुः स्वयम्। शिथिलीकृतकैलासनिवासव्यसनो हरः ।।' इस रूप में मिलता है।

इनके अतिरिक्त कादम्बरी के पात्र बृहत्कथासरित्सागर के पात्रों के बहुत मिलते-जुलते हैं। जैसे—

बृहत्कथासरित्सागर के पात्र—	कादम्बरी के पात्र—
काञ्चनपुरी	विदिशा
सुभाग	शूद्रक
मुक्तालता	चाण्डालकन्या
शास्त्रगञ्ज शुक	वैशम्पायन शुक
हिमालयस्थरोहिणीवृक्ष	विन्ध्याटवीस्थशाल्मलीवृक्ष
मरीचि	हारीत
पौलस्त्य	जाबालि
रत्नाकरपुर	उज्जयिनी
ज्योतिष्प्रभ	तारापीड
हर्षवती	विलासवती
सोमप्रभ	चन्द्रापीड
प्रभाकर	शुकनास
प्रियङ्कर	वैशम्पायन
आशुश्रवा	इन्द्रायुध
पद्मकूट	हंस
हेमप्रभा	गौरी
मनोरथप्रभा	महाश्वेता
दीधितिमान्	श्वेतकेतु
रश्मिवान्	पुण्डरीक
सिंहविक्रम नामक गन्धर्वराज	चित्ररथ नामक-गन्धर्वराज
मकरन्दिका	कादम्बरी
देवजय	केयूरक
सिंहविक्रम नामक शुक	वैशम्पायन नामक शुक
रश्मिवान् ही सुभाग	चन्द्रापीड ही शूद्रक

उपर्युक्त समता के आधार पर हम कह सकते हैं कि कादम्बरी कथा का मूल बृहत्कथासरित्सागर ही है।

कादम्बरीशब्द की व्याख्या

कादम्बरी गन्धर्वराज की पुत्री है। उसको उद्देश्य करके रची गई कथा कादम्बरी कहलाती है। क्योंकि **'कादम्बरीमधिकृत्य कृता कथा'** इस अर्थ में कादम्बरी शब्द से **'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे'** सूत्र से अण् प्रत्यय होता है। उस अण् का **'लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्'** वार्तिक से लोप हो जाने पर **'लुपि युक्तवद्व्यक्तिवचने'** सूत्र से प्रकृतिवत् लिंग और वचन करके कादम्बरी शब्द की सिद्धि की जाती है। अथवा कादम्बरी मदिरा को कहते हैं। उसके समान आह्लादक एवम् मादक होने के कारण इस कथा का नाम कादम्बरी रखा गया। कादम्बरी के उत्तरार्ध में भूषणभट्ट ने कहा भी है—**'कादम्बरी-रसभरेण समस्त एव मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।'** मदिरावाची कादम्बरी शब्द की सिद्धि इस प्रकार होती है—**' स्तितम् अम्बरं यस्य सः कदम्बरः अर्थात् मलिनवासाः नीलाम्बरः बलभद्रः। 'नीलाम्बरो रौहिणेयः'** **इत्यमरः। कदम्बरस्य प्रिया इयं कादम्बरी कदम्बर+अण् 'तस्येदम्'** इति सूत्रेण, ततो ङीप्। अथवा **कदम्बस्य पु० कदम्बं तेषां समूहः कादम्बं तत् राति लातीति आतोऽनुपसर्गे कः'** इति सूत्रेण क **प्रत्ययः=कादम्बरम्, 'स्त्रियाम् विद्गौरादिभ्यश्च'** इति सूत्रेण ङीषि तु कादम्बरी।

कादम्बरी को संक्षिप्त कथा

विदिशा नामक प्रसिद्ध नगरी में शूद्रक नाम का एक राजा था। एक बार जब वह राजसभा में बैठा हुआ था, प्रतीहारी ने आकर किसी चांडाल-कन्या के आगमन की सूचना दी। राजा ने उसे अन्दर लाने की आज्ञा दे दी। सभा-भवन में पहुँचने पर चांडाल-कन्या ने राजा को प्रणाम किया और अपने साथ लाये हुए एक तोते को राजा के सामने रख दिया। तोते ने राजा की प्रशंसा में छन्द पढ़ा। राजा उसकी वाणी सुनकर अत्यन्त विस्मित

हुआ। उसने तोते से अपना समस्त वृत्तान्त सुनाने को कहा। तोते ने इस प्रकार कहना प्रारंभ किया—

'विन्ध्याटवी में एक विशाल शाल्मली (सेमर) वृक्ष पर मेरा जन्म हुआ। मेरे जन्म के बाद ही मेरी माता का देहान्त हो गया। अतएव मेरे वृद्ध पिता मेरा लालन-पालन कर रहे थे कि एक दिन वहाँ शिकारियों के आने का शब्द सुनाई पड़ा। उनमें से एक वृद्ध शिकारी उस शाल्मली वृक्ष पर चढ़ गया और शुक-शावकों को मार-मार कर नीचे फेंकने लगा। स्नेह-वश मेरे पिता ने मुझे अपने परों में छिपा लिया। अतएव जब उसने उन्हें मारकर नीचे फेंका तो मुझे नहीं देखा। मैं किसी तरह वहाँ से चलकर एक तमाल वृक्ष की जड़ में छिप गया। वह शबर मरे हुए पक्षियों को लेकर चला गया। मैं उस समय प्यास से तड़प रहा था। संयोगवश उसी समय स्नानार्थ जाते हुए मुनि के पुत्र हारीत की दृष्टि मुझ पर पड़ी। उन्होंने दया-वश मुझे उठा लिया और पानी पिलाकर मुझे अपने आश्रम में ले गए। वहाँ महर्षि जाबालि ने मेरी ओर देखा और कहा कि यह अपने किए हुए दुष्कर्म का फल भोग रहा है। मुनि की बात सुनकर सबको मेरे विषय में जानने की उत्सुकता हुई। मुनि ने कहा—इसकी कहानी लंबी है। फिर भी तुम लोग सुनना चाहते हो तो सुनो—

'मालवा की राजधानी उज्जयिनी में तारापीड नाम का राजा था। उसकी रानी का नाम विलासवती था। उसके महाबुद्धिमान् मन्त्री शुकनास की पत्नी मनोरमा थी। बहुत दिनों तक सन्तानहीन रहने के बाद देवता की आराधना से दोनों दम्पतियों को पुत्ररत्नों की प्राप्ति हुई। राजा के पुत्र का नाम चन्द्रापीड रखा गया और मन्त्री के पुत्र का नाम वैशम्पायन। दोनों बालकों ने अपना शैशव एक साथ बिताया और साथ-साथ सभी विद्याओं में निपुणता प्राप्त की। विद्याध्ययन के बाद राजा ने चन्द्रापीड को युवराज बना दिया। यौवराज्याभिषेक के समय शुकनास ने चन्द्रापीड को उपदेश दिया। पश्चात् चन्द्रापीड ने इन्द्रायुध नामक घोड़े पर चढ़कर दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। अनेक देशों को जीतते हुए उसने किरातों की राजधानी

हेमकूट पर अपना अधिकार जमा लिया। यहीं एक बार शिकार करते हुए उसको किन्नरों की एक जोड़ी दिखाई दी। उनका पीछा करते-करते वह बहुत दूर चला गया। सब साथी बिछुड़ गए। वह प्यास से व्याकुल होकर जलाशय की खोज करते-करते अच्छोद नामक सरोवर पर पहुँचा। वहाँ के शिव-मन्दिर में तपस्या करती हुई एक परम सुन्दरी कन्या महाश्वेता से उसका परिचय हुआ। चन्द्रापीड के अनुरोध करने पर महाश्वेता अपने विषय में इस प्रकार कहने लगी—

'मैं गन्धर्वराज हंस की पुत्री हूँ। मेरा नाम महाश्वेता है। एक दिन मै अपनी माता के साथ स्नान करने के लिए यहीं आई थी। कही से एक अलौकिक सुगंध आ रही थी। मैं उस गंध का अनुसरण करती हुई आगे बढ़ी। कुछ दूर जाने पर एक अत्यंत सुन्दर मुनिकुमार को अपने मित्र के साथ आते हुए देखा। उसके कान में एक कुसुम-मंजरी थी। मैंने उसको प्रणाम किया और उसके मित्र से पूछा—'आप लोगों का क्या परिचय है?' यह कुसुम-मंजरी किस वृक्ष की है?' उसने उत्तर दिया—'ये महर्षि श्वेतकेतु के पुत्र हैं। इनका नाम पुण्डरीक है। लक्ष्मी जी से इनकी उत्पत्ति हुई है। मेरा नाम कपिञ्जल है। यह पारिजात वृक्ष की कुसुम-मंजरी है।' उसके यों कह चुकने पर मुनिकुमार ने मुझ से कहा—'इस प्रश्न से क्या प्रयोजन? यदि इसकी सुगन्धि तुम्हें भली लगी है तो इसे ले लो।' यह कहकर पुण्डरीक ने मंजरी मेरे कान में पहना दी। हम दोनों एक दूसरे के प्रति अत्यंत आसक्त हो गये।

अनन्तर जब मैं माँ के साथ घर चली आई तब कपिञ्जल ने आकर मुझे एक पत्र दिया। उसे पढ़कर मैं व्याकुल हो गई। फिर रात्रि में तरलिका को साथ लेकर पुण्डरीक से मिलने चली। निकट पहुँचने पर देखा कि मेरी वियोग व्यथा के कारण पुण्डरीक का प्राणान्त हो गया है। यह देखकर मैंने भी उनका अनुगमन करने का निश्चय किया। किन्तु उसी समय चन्द्र-मंडल से उतरकर किसी महापुरुष ने कहा—'बेटी! तुम दोनों का पुनर्मिलन होगा।' यह कहकर उसने पुण्डरीक के शरीर को उठा लिया और आकाश में उड़

गया। कपिञ्जल ने भी यह कहते हुए कि मेरे मित्र को कहाँ ले जा रहे हो, उसका पीछा किया। तब से मैं यहीं शङ्कर की आराधना में समय व्यतीत कर रही हूँ।'

चन्द्रापीड के यह पूछने पर कि तरलिका कहाँ है, महाश्वेता पुनः कहने लगी—

'गन्धर्वराज चित्ररथ की पुत्री कादम्बरी मेरी अभिन्न सखी है। उसने प्रतिज्ञा की है कि महाश्वेता के सशोक रहने पर मैं विवाह नहीं करूँगी। उसके पिता के अनुरोध से मैंने तरलिका को उसे समझाने के लिए भेजा है।'

दूसरे दिन महाश्वेता जप कर रही थी और चन्द्रापीड भी नित्य कर्म में लगे हुए थे। इतने में तरलिका कादम्बरी के एक अनुचर केयूरक के साथ वहाँ आ गई। महाश्वेता ने यह कहते हुए कि चलो मैं अभी आ रही हूँ, केयूरक को लौटा दिया। पश्चात् चन्द्रापीड को लेकर स्वयं कादम्बरी को समझाने के लिए चल पड़ी। वहीं पर चन्द्रापीड और कादम्बरी में परस्पर प्रेम हो गया। कादम्बरी के अनुरोध पर चन्द्रापीड उस दिन वहीं ठहर गया। दूसरे दिन कादम्बरी से विदा लेकर राजकुमार अपनी सेना में आ पहुँचा, जो उसे ढूंढ़ती हुई अच्छोद सर तक आ गई थी। यहाँ सब से मिलकर चन्द्रापीड पत्रलेखा के साथ पुनः कादम्बरी से मिलने के लिए गया। कादम्बरी के अनुरोध पर पत्रलेखा को उसी के पास छोड़ कर जब पुनः अपने शिविर को लौटा तो उसे अपने पिता का एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि वह तुरन्त लौट आये। अतः वह वैशम्पायन आदि से बाद में सेना सहित आने के लिए कहकर स्वयं उज्जयिनी के लिए प्रस्थित हो गया।

अनन्तर पत्रलेखा को साथ में लिए केयूरक ने आकर चन्द्रापीड से कादम्बरी की अतिशय विरह-वेदना का वर्णन किया। राजकुमार बहुत दुःखी हुआ। उसने केयूरक को शीघ्र आने का आश्वासन देकर पत्रलेखा सहित विदा कर दिया। इधर उसकी सेना दशपुर तक आ गई थी, यह सुनकर वैशम्पायन को लिवा लाने के बहाने पिता का आदेश लेकर वह स्वयं भी चल

पड़ा। मार्ग में अपने लौटते हुए सैनिकों से उसे पता चला कि अच्छोद सर के निकट पहुँचने पर वैशम्पायन की ऐसी मनःस्थिति हो गई कि लाख समझाने पर भी वह वहाँ से टस से मस नहीं हुआ। फिर क्या था चन्द्रापीड वैशम्पायन को लिवा लाने के लिए अच्छोद सरोवर पहुँच गया। वहाँ वैशम्पायन का कहीं पता नहीं था। अब वह महाश्वेता के आश्रम में गया। महाश्वेता को अत्यंत करुण अवस्था में देखकर उसने कारण पूछा। महाश्वेता कहने लगी—'आप के चले जाने के पश्चात् यहाँ एक ब्राह्मण-युवक आया। वह बार-बार मेरे मना करने पर भी मुझ से प्रेम की याचना करने लगा; मैंने क्रुद्ध होकर उसे शुक-योनि को प्राप्त हो जाने का शाप दे दिया। वह तत्काल निष्प्राण होकर धरती पर गिर पड़ा। पश्चात् उसके साथियों से पता चला कि वह आपका प्रिय मित्र वैशम्पायन था। इतना कहकर महाश्वेता बिलख-बिलख कर रोने लगी।

वैशम्पायन की मृत्यु की बात सुनते ही चन्द्रापीड का हृदय विदीर्ण हो गया। वह धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा। उसी समय कादम्बरी पत्रलेखा के मुँह से चन्द्रापीड के आने का समाचार सुनकर महाश्वेता के आश्रम में आई। उसने चन्द्रापीड की यह दशा देखकर सह-मरण का निश्चय किया। किन्तु उसी समय चन्द्रापीड के शरीर से सहसा एक ज्योति निकली और आकाशवाणी हुई कि—'महाश्वेता! धैर्य रखो। तुम्हारा अपने प्रियतम से मिलन होगा। कादम्बरी! तुम चन्द्रापीड के शरीर को सुरक्षित रखो। इसका अग्नि-संस्कार न करो। यह पुनः जीवित होगा।'

उसी समय पत्रलेखा इन्द्रायुध अश्व को लेकर अच्छोद सर में प्रविष्ट हो गई। कुछ देर बाद उसी सरोवर में से कपिञ्जल निकला। वह महाश्वेता से कहने लगा—'पुण्डरीक के शरीर को ले जाने वाले महापुरुष का अनुगमन करता हुआ मैं चन्द्र-लोक पहुँचा। वहाँ उसने मुझ से कहा—'मैं चन्द्रमा हूँ। महाश्वेता की विरहाग्नि में तड़पते हुए तुम्हारे मित्र पुण्डरीक ने मुझे निष्कारण शाप दिया था कि तुम मृत्युलोक में दो बार जन्म लेकर वियोगाग्नि में तड़प-तड़प कर प्राणत्याग करोगे। इस पर मैंने भी उसे शाप दे दिया था कि तुम भी मेरे साथ सुख-दुःख भोगोगे। क्रोध दूर होने पर महाश्वेता के दुःख को

देखकर मैं पुण्डरीक के शरीर को सुरक्षित रखने के लिए यहाँ ले आया हूँ। तुम यह समाचार महर्षि श्वेतकेतु से जाकर बता दो।'

चन्द्र-लोक से लौटता हुआ मैं शोक-मूढ होने के कारण एक महर्षि से टकरा गया। उन्होंने मुझे शाप दे दिया कि तुम अश्व हो जाओ। मेरे अनुनय-विनय करने पर उन्होंने कहा—'मेरा शाप टल नहीं सकता। हाँ, इतना होगा कि तुम शीघ्र अश्वयोनि से छुटकारा पा जाओगे और उस योनि में भी तुम ज्ञान-ध्यान रखते हुए अपने मित्र के साथ ही रहोगे।' इसलिए चन्द्रदेव चन्द्रापीड हुए, मैं उनका वाहन इन्द्रायुध हुआ और पुण्डरीक चन्द्रापीड का मित्र वैशम्पायन ही था जो तुम्हारे शाप से शुकयोनि को प्राप्त हो गया है।'

इतना कहकर कपिञ्जल आकाश में उड़ गया। महाश्वेता रोने लगी। कादम्बरी चन्द्रापीड के शरीर को देवोचित पूजा के साथ शिलातल पर रखकर दिन बिताने लगी। इधर जब चन्द्रापीड और वैशम्पायन के मातापिता को यह दुःखद समाचार मालूम हुआ तब वे लोग भी वहीं आकर देवाराधन करने लगे।

इतनी कहानी कहने के पश्चात् महर्षि जाबालि ने ऋषियों से कहा—'महाश्वेता के शाप से शुक-योनि को प्राप्त वैशम्पायन ही यह शुक है।' यह सुनकर मुझे अपने विगत जन्म की समस्त विद्यायें स्मरण हो आईं और मैं जातिस्मर हो गया। दूसरे दिन प्रातःकाल मेरे पास कपिञ्जल आया। उसने बताया—'पिता जी सकुशल हैं। वे तुम्हारे उद्धार के लिए अनुष्ठान कर रहे हैं। अनुष्ठान की समाप्ति तक तुम यहीं रहो।' तना कहकर वह चला गया। मेरा पालन-पोषण वहीं मुनिकुमार हारीत के द्वारा होने लगा। अब मुझ में कुछ उड़ने की शक्ति आयी तो एक दिन मैं महाश्वेता आदि से मिलने के लिए वहाँ से उड़ चला। थोड़ी दूर जाने पर मैं थक गया और वहीं सरोवर के तट पर एक प्रशान्त निकुंज में सो गया। नींद खुलने पर देखा कि मैं एक बहेलिये के पाश में आबद्ध हूँ। लाख गिड़गिड़ाने पर भी उसने मुझे नहीं छोड़ा, लाकर इसी चांडालकन्या के हाथ में सौंप दिया। इसी ने आज तक मेरा पालन-पोषण किया है। इस समय आपके समक्ष क्यों ले आयी है—यह जानने की मुझे भी उत्सुकता है।' इतना कहकर तोता चुप हो गया है।

अनन्तर राजा के पूछने पर चांडाल-कन्या ने कहा—'हे कादम्बरी-नयनानन्द चन्द्र ! आपने अपना और पुण्डरीक का वृत्तान्त सुन लिया। मैं पुण्डरीक की माँ लक्ष्मी हूँ। इस शुक-योनि में भी इसने पिता की आज्ञा के विरुद्ध कामवश होकर कार्य करना प्रारम्भ किया। अतएव मैंने इसको कैद करवा कर पिंजड़े में बन्द रखा। अब आप दोनों के शापावसान का समय है। अतएव मैं इसको आपके समक्ष ले आयी हूँ। आप दोनों अपने प्रिय जनों के समागम का आनन्द लें।' कह कर चांडाल-कन्या अन्तर्हित हो गई।

अपने पूर्वजन्मों का वृत्तान्त सुनकर शूद्रक और वैशम्पायन दोनों के हृदय वियोगाग्नि से जलने लगे। असह्य पीड़ा के कारण दोनों ने प्राण त्याग दिये। इधर मधुमास के आगमन से कादम्बरी भी कामार्त्त होकर चन्द्रापीड के शरीर का आलिंगन करने लगी। सहसा चन्द्रापीड जीवित हो उठा। उसने कादम्बरी की समस्त कथा बता देने के पश्चात् कहा कि पुंडरीक भी अब आता ही होगा।

इसके पश्चात् सभी का मिलन हुआ। चारों ओर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। चन्द्रापीड और पुण्डरीक अपनी-अपनी प्रियतमाओं (कादम्बरी और महाश्वेता) के साथ परिणय-सूत्र में आबद्ध होकर आनन्दपूर्वक जीवन बिताने लगे।

ओम्

कादम्बरीकथान्तर्गतः

शुकनासोपदेशः

'तात ! चन्द्रापीड ! विदितवेदितव्यस्य[1] अधीतसर्वशास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति। केवलञ्च[2] निसर्गत एव अभानुभेद्यमरत्नालोकच्छेद्यमप्रदीपप्रभापनेयमतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्। अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः। कष्टमनञ्जनवर्त्तिसाध्यमपरम्[3] ऐश्वर्यतिमिरान्धत्वम्। अशिशिरोपचारहार्य्योऽतितीव्रः[4] दर्पदाहज्वरोष्मा। सततममूलमन्त्रशम्यः[5] विषमो विषयविषास्वादमोहः। नित्यमस्नानशौचबाध्यः[6] बलवान् रागमलावलेपः। अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्यसुखसन्निपातनिद्रा भवति, इत्यतः विस्तरेणाभिधीयसे।

संस्कृत टीका—तात—पुत्र !, चन्द्रापीड !, विदितवेदितव्यस्य—विदितं ज्ञातं वेदितव्यं ज्ञातव्यविषयः येन तस्य (ब० स०), अधीतसर्वशास्त्रस्य—अधीतानि पठितानि सर्वाणि सकलानि शास्त्राणि वेदपुराणादीनि येन तस्य

---

(१) वेद्यस्य। (२) केवलन्तु। (३) अपटलम्। (४) अत्यन्ततीव्रः। (५) ....मूलमन्त्रगम्यः। (६) ...वध्यः, बाध्यः, बलवान् इति विभिन्न पाठरूपात्मकं पदं क्वचिन्नोपलभ्यते।

(ब० स०), ते—तव, न—नहि, अल्पमपि—किञ्चिदपि, उपदेष्टव्यम् कथनीयम्, अस्ति—विद्यते। केवलञ्च—किन्तु, यौवनप्रभवम्—यौवनात् तारुण्यात् प्रभवम् समुत्पन्नम् (प० न०), तमः—तमोगुणोत्पन्नाज्ञानरूपोऽन्धकारः, निसर्गत एव—स्वभावत एव, (अनिर्दुर्दमनोयं भवति; यतो हि तत्) अभानुभेद्यम्—भानुना सूर्येण अभेद्यम् अ रुच्छेद्यम्, अरत्नालोकच्छेद्यम्—रत्नानां मणीनाम् आलोकेन प्रभया अच्छेद्यम् विनाशयितुमशक्यम्, अप्रदीपप्रभापनेयम्—प्रदीपानां प्रभया न अपनेयम् दूरीकर्तुं न शक्यम्, (अतएव) अतिगहनम्—अत्यन्तदुर्धर्षम् (भवति नराणामिति शेषः)। लक्ष्मीमदः—लक्ष्म्याः सम्पदः मदः गर्वः (ष० त०), अपरिणामोपशमः—नास्ति परिणामे अन्तिमावस्थायाम् उपशमः निवृत्तिः यस्य स तथाभूतः (न० ब० स०), (अतएव) दारुणः—भयंकरः (भवति)। अपरम्—एतदतिरिक्तम्, ऐश्वर्यतिमिरान्धत्वम्—ऐश्वर्यं सम्पत्तिः एव तिमिरं तिमिरसंज्ञकनेत्ररोगः (मयू० स०) तेन अन्धत्वम् अन्धता (तृ० त०), अनञ्जनवर्त्तिसाध्यम्—अञ्जनवर्त्तिना अञ्जनशलाकया न साध्यम् न प्रतीकार्यम् अचिकित्स्यमित्यर्थः (भवति, अतएव), कष्टम्—क्लेशकरम् (भवति)। अतितीव्रः—अत्यन्ततीक्ष्णः दर्पदाहज्वरोष्मा—दर्पस्य (सम्पत्तेः) गर्वस्य दाहज्वरः तीक्ष्णतापः तस्य ऊष्मा उष्णता (ष० त०), अशिशिरोपचारहार्यः—शिशिरैः शीतलैः उपचारैः चन्दनादिशैत्यव्यापारैः न हार्यः न निवारयितुं शक्यः। विषमः—प्रचण्डः, विषयविषास्वादमोहः—विषयाः सुरतादयः एव विषाणि गरलानि (मयू० स०) तेषाम् आस्वादेन उपभोगेन (तृ० त०) उत्पन्नः मोहः जडता, सततम्—अनिशम्, अमूलमन्त्रशम्यः—मूलैः ओषधिमूलैः मन्त्रैः विषविनाशकमन्त्रैः न शम्यः न शमयितुं शक्यः। बलवान्—नितान्तः, रागमलावलेपः—रागः विषयानुरागः एव मलं पंकः (मयू० स०) तस्य अवलेपः लेपनम् (ष० त०), नित्यं—प्रतिदिनम्, अस्नानशौचबाध्यः—स्नानशुद्धिभ्यां न बाध्यः न अपनेतुं शक्यः। च—पुनः, घोरा—दारुणा, राज्यसुखसन्निपातनिद्रा—राज्यसुखस्य राज्योपभोगजन्यानन्दस्य सन्निपातः संघातः (ष० त०) स एव निद्राशयनम् (मयू० स०), अजस्रम्, अनवरतम्, अक्षपावसानप्रबोधा—न विद्यते-क्षपावसाने रात्र्यन्ते प्रबोधः जागरणं चैतन्योदयो वा यस्यां सा तादृशी (न० ब० स०), भवति—जायते, इत्यतः—अस्मात् कारणात्, विस्तरेण—विस्तारपूर्वक बारंवारं वा अभिधीयसे—कथ्यसे त्वमिति शेषः।

हिन्दी अनुवाद—वत्स चन्द्रापीड ! जानने योग्य विषयों को जानने वाले एवम् समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर चुकने वाले तुम्हें थोड़ा भी उपदेश नहीं देना है। किन्तु (केवल यही कहना है कि) युवावस्था में उत्पन्न होने वाला (अज्ञान रूप) अन्धकार स्वभाव से ही सूर्य के द्वारा विनष्ट करने योग्य नहीं होता, मणियों की प्रभा से उच्छिन्न नहीं किया जा सकता, दीपक के प्रकाश से हटाया नहीं जा सकता और अत्यंत दुर्दमनीय होता है। धन-सम्पत्ति का भयंकर मद अन्तिम अवस्था में भी शान्त नहीं होता। दूसरा, ऐश्वर्य रूप तिमिर (नामक रोग) से उत्पन्न होने वाला अन्धापन, जिसकी चिकित्सा अंजनलिप्त शलाका से नहीं की जा सकती, कष्टदायक होता है। (सम्पत्ति के) अभिमान रूप तीव्र ज्वर की गरमी शीतल उपचारों से दूर करने योग्य नहीं होती। विषय रूप विष के उपभोग से उत्पन्न होने वाला कठिन मोह निरन्तर औषधियों एवम् मन्त्रों (के प्रयोग) द्वारा शमन करने योग्य नहीं होता। (विषयों के प्रति) अनुराग रूप मल का अत्यन्त लेप नित्य किये जाने वाले स्नान एवम् शुद्धि के द्वारा हटाने योग्य नहीं होता। और सर्वदा राज्य-सुखों के समूह रूप घोर निद्रा रात्रि के अवसान में भी नहीं खुलती। इसलिए विस्तार से तुम्हें कहा जाता है।

टिप्पणी—**कादम्बरी**—कादम्बरी=मद्यम्। 'गन्धोत्तमा प्रसन्नेराकादम्बर्यः परिस्रुता। मदिरा कश्यमद्येऽपि' इत्यमरः। सौन्दर्येण मद्यवत् चित्तोन्मादकत्वात् चित्ररथनाम्नो गन्धर्वराजस्य दुहितुः नाम कादम्बरीति जातम्। ताम् कादम्बरीम् अधिकृत्य कृतो ग्रन्थः इति विग्रहे कादम्बरी+अण्, तस्य 'लुबाख्यायिकाभ्यो बहुलम्' इति वार्तिकेन लोपः। **शुकनासोपदेशः**—शुकस्य नासा इव नासा यस्य असौ शुकनासः ब० स०, तस्य उपदेशः ष० त०। शुकनास राजा तारापीड का मन्त्री था। उसने राजकुमार चन्द्रापीड को जो उपदेश दिया था, वही इस पुस्तक में वर्णित है। **तात**—यह सम्बोधन शब्द अपने से बड़ों या छोटों के लिए प्रयुक्त होता है। 'तातशब्दं प्रयुञ्जन्ति पूज्ये पितरि चात्मजे' इति नारदः। **चन्द्रापीड !**—चन्द्रः आपीडः=शेखरो यस्य असौ चन्द्रापीडः ब० स०, तस्य सम्बोधने हे चन्द्रापीड ! । 'विदित......' इस वाक्य में उपदेष्टव्यस्याभाव के प्रति 'विदित-वेदितव्यस्य' और 'अधीतसर्वशास्त्रस्य' इन दोनों विशेषणों का

अर्थ कारण है, अतएव यहाँ पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार है। **विदित**—√विद् (ज्ञान)+क्त। **वेदितव्य**—√विद्+तव्यत्। **अधीत**—अधि √इ (अध्ययन) +क्त। **उपदेष्टव्य**—उप√दिश् (बताना) +तव्यत्। **अभानुभेद्यम्**—भानुना भेद्यम् (तृ० त०) न भानुभेद्यम् (न० त०)। **भेद्य**—√भिद् (विदारण)+ ण्यत्। **अरत्नालोकच्छेद्यम्**—रत्नानाम् आलोकः (ष० त०) तेन उच्छेद्यम् (तृ० त०) न रत्नालोकच्छेद्यम् (न० त०)। **उच्छेद्य**—उत्√छिद् (काटना)+ ण्यत्। **अप्रदीपप्रभापनेयम्**—प्रदीपानां प्रभा (ष० त०) तया अपनेयम् (तृ० त०) न प्रदीप प्रभापनेयम् (न० त०)। **अपनेय**—अप√नी (ले जाना)+ यत्। **यौवनप्रभव**—यौवनात् प्रभवति=समुत्पद्यते, प्र√भू (होना) +अप (कर्तरि)। 'केवलञ्च......' इस वाक्य में अतिशयोक्ति, समुच्चय एवम् पदार्थ-हेतुक काव्यलिंग अलंकारों में परस्पर अंगांगिभाव संबंध होने के कारण संकर अलंकार है। **उपशम्**—उप √शम् (शान्ति) + घञ्। **दारुण**—भयंकर। 'दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकम्' इत्यमरः। 'अपरि...' इस वाक्य में पदार्थ-हेतुक काव्य-लिंग अलंकार है। **अनञ्जनवर्ति-साध्यम्**—अञ्जनस्य वर्तिः (ष० त०) तया साध्यम् (तृ० त०) न अञ्जन वर्तिसाध्यम् (न० त०)। **अञ्जनवर्ति**—बिलाव आदि की चर्बी से बनाया जाने वाला एक तांत्रिक अंजन। उससे युक्त शलाका। कहते हैं कि इसके प्रयोग से तिमिरान्धता (रतौंधी) दूर होती है और अन्धकार में भी पढ़ने की शक्ति प्राप्त होती है। 'अन्धकारे महाघोरे रात्री पठति पुस्तकम्'। **अशिशिरोपचारहार्यः**—शिशिराः उपचाराः (कर्म० स०) तैः हार्यः (तृ० त०) न शिशिरोपचारहार्यः (न० त०) **उपचार**—प्रतिकार, चिकित्सा। उप √चर् (गति) +घञ्। **अमूलमन्त्रशम्यः**—मूलानि च मन्त्राश्च (द्व० स०) तैः शम्यः (तृ० त०) न मूलमन्त्रशम्यः (न० त०)। **शम्य**—√शम्+यत्। **विषय**—विषिणोति=बध्नाति इति विषयः, वि√सि (बन्धन) +अच्। **अस्नानशौचबाध्यः**—स्नानञ्च शौचञ्च (द्व० स०) ताभ्यां बाध्यः (तृ० त०) न स्नानशौचबाध्यः (न० त०)। **बाध्य**— √बाध् (बाधा)+ण्यत्। **राग**—√रञ्ज् (अनुरक्त होना)+घञ्। **अवलेप**—अव √लिप् (लीपना)+घञ्। **अजस्र**=नित्य। 'नित्येऽनवरतःजस्रम्' इत्यमरः। **प्रबोध**=जागरण, सचेत होना। प्र√बुध् (जागना) +घञ्। **सन्निपात**—सम्-

नि √पत् (गिरना) +घञ्। **विस्तर**—वि√स्तृ (फैलाना) +अप्।
अभिधीयसे—अभि√धा+लट् (कर्मणि) मध्यमपुरुषस्यैकवचने रूपमिदम्।
'अञ्जनवर्ति......' से लेकर 'राज्यसुखसन्निपात' तक अधिकारूढवैशिष्ट्य अलंकार है। क्योंकि जहाँ तिमिररोगजन्य अन्धता अंजन-शलाका से दूर की जा सकती है वहाँ ऐश्वर्यतिमिरान्धता किसी भी प्रकार से दूर नहीं होती। यही इसमें वैशिष्ट्य है। इसी प्रकार यहाँ अन्य वाक्यों में ऊह कर लेना चाहिए।

गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वञ्चेति महतीयं[1] खल्वनर्थपरम्परा। सर्वाविनयानामेकैकमप्येषामायतनम्, किमुत समवायः। यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। अनुज्झितधवलतापि[2] सरागैव[3] भवति यूनां दृष्टिः। अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्तिरतिदूरम्[4] आत्मेच्छया यौवनसमये पुरुषं प्रकृतिः। इन्द्रियहरिणहारिणी च सततमतिदुरन्तेयम्[5] उपभोगमृगतृष्णिका। नवयौवनकषायितात्मनश्च सलिलानीव तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः। नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्तकः पुरुषमत्यासङ्गो विषयेषु।

संस्कृत टीका—गर्भेश्वरत्वम्—गर्भात् आबाल्यात् ईश्वरत्वम् ऐश्वर्यशालित्वम् (पं० त०), अभिनवयौवनत्वम्—अभिनवं यौवनम् यस्य (ब० स०) तस्य भावः तत्त्वम् नूतनतारुण्यसम्पन्नत्वमित्यर्थः, अप्रतिमरूपत्वम्—अप्रतिमम् उपमारहितं रूपं यस्य (ब० स०) तस्य भावः तत्त्वम् निरुपमसौन्दर्यशालित्व-

(१) महती। (२) धवलापि। (३) सरागेव। (४) अदूरम्, दूरम् (५) इन्द्रियहरिण हरतीव। सततदुरन्तेयम्, सततमतिदुरन्तेयमुपभोगः, सततमतिदुरन्ते इयं दूरं नयत्युपभोगः।

मित्यर्थः, च—तथा, अमानुषशक्तित्वम्—अमानुषी लोकोत्तरा शक्तिः सामर्थ्यं यस्य (ब० स०) तस्य भावः तत्त्वम् लोकोत्तरशक्तिविशिष्टत्वमित्यर्थः, इति, इयं, खलु—निश्चयेन, महती—गुर्वी, अनर्थपरम्परा—अनर्थानां विपत्तीनां परम्परा श्रेणी (ष० त०), एषाम्—गर्भेश्वरत्वादीनां (मध्ये) एकैकमपि—एकम् एकम् अपि, सर्वाविनयानाम्—सर्वेषाम् समेषाम् अविनयानाम् औद्धत्यानाम्, आयतनम्—गृहम्, समवायः—समूहः, (अर्थात् एतेषां समूहविषये) किमुत—किं कथनीयमित्यर्थः। च—पुनः, यौवनारम्भे—यौवनस्य तारुण्यस्य आरम्भे प्रारम्भिके काले (ष० त०) प्रायः—बाहुल्येन, शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि—शास्त्रमेव जलं (मयू० स०) तेन प्रक्षालनं धावनं (तृ० त०) तेन निर्मलापि स्वच्छापि (तृ० त०) बुद्धिः—मतिः, कालुष्यं—मालिन्यम्, उपयाति—प्राप्नोति। यूनाम्—युवकानाम्, दृष्टिः—अवलोकनम्, अनुज्झितधवलतापि—न उज्झिता न त्यक्ता धवलता स्वच्छता यया सा तथाभूतापि (न० ब० स०), सरागैव—रागेण रक्तिमया सह वर्तमानैव (सह ब० स०) (भवति)। च—किञ्च यौवनसमये—युवावस्थायां, समुद्भूतरजोभ्रान्तिः—समुद्भूता समुत्पन्ना रजसा रजोगुणेन भ्रान्तिः भ्रमः यस्यां सा तथाभूता (पक्षे—समुद्भूता रजसां रेणूनां भ्रान्तिः भ्रमणं यस्याम् सा), प्रकृतिः—स्वभावः, वात्या—वायुसमूहः वातकलिकेति यावत्, शुष्कपत्रं—नीरसपर्णम्, इव—तद्वत्, पुरुषं—मनुष्यम्, आत्मेच्छया—स्वेच्छया यथेच्छमित्यर्थः, अतिदूरं—विवेकात् परं (पक्षे—सुदूरदेशम्), अपहरति—नयति। च—किञ्च, अतिदुरन्ता—अत्यन्तदुःखावसाना, इयम्—एषा, उपभोगमृगतृष्णिका—उपभोगः सुरतादिः स एव मृगतृष्णिका मरुमरीचिका (मयू० स०), सततम्—सन्ततम्, इन्द्रियहरिणहारिणी—इन्द्रियाणि एव करणानि एव हरिणाः मृगाः (मयू० स०) तेषां हारिणी हरणशीला (ष० स०) (वर्तते)। च—पुनः, नवयौवनकषायितात्मनः—नवेन नूतनेन यौवनेन तारुण्येन कषायितः विपरिवर्तितः रागद्वेषादिभिः युक्तीकृतः आत्मा स्वरूपं यस्य तथाविधस्य, मनसः—(तरुणपुरुषस्य) चेतसः, सलिलानि इव, जलानि इव, तानि एव—प्रसिद्धानि एव, विषयस्वरूपाणि—भोग्यपदार्थाः, आस्वाद्यमानानि—अनुभूयमानानि, (सन्ति), मधुरतराणि—मिष्टतराणि, आपतन्ति—प्रतीयन्ते। च—तथा, दिङ्मोह इव—दिग्भ्रान्तिरिव, उन्मार्गप्रवर्तकः—कुपथ-

प्रेरकः, विषयेषु—भोग्यपदार्थेषु, अत्यासङ्गः—अतीवासक्तिः, पुरुषम्—नरम्, नाशयति—विनाशं प्रापयति ।

हिन्दी अनुवाद—जन्मतः प्राप्त ऐश्वर्य, नई जवानी, अनुपम सौन्दर्य और अलौकिक शक्ति—यह निश्चय ही अनर्थों की महान् परम्परा (कारण-कोटि) है । इनमें से एक-एक भी सभी प्रकार के अविनयों (दुःशीलताओं) के निवास-स्थान हैं, (इनके) समूह का तो कहना ही क्या । युवावस्था के आरम्भ में (मनुष्य की) बुद्धि शास्त्र रूपी जल से धुल कर निर्मल होने पर भी प्रायः कलुषित हो जाती है । युवकों की दृष्टि स्वच्छता का त्याग न करने पर भी राग (लालिमा या अनुराग) से युक्त ही रहती है । जवानी के समय रजोगुण से उत्पन्न भ्रान्ति वाली (वात्या-पक्ष में—धूलों के चक्कर से युक्त) प्रकृति पुरुष को उसी प्रकार अपनी इच्छा से अत्यन्त दूर (अर्थात् विवेक से परे; वात्या—पक्ष में—सुदूर स्थान में) खींच ले जाती है जैसे वात्या (बवंडर) सूखे पत्ते को । अत्यन्त दुःखद परिणाम वाली यह (विषयों के) उपभोग रूप मृगतृष्णा सर्वदा इन्द्रिय रूपी हरिणों का विनाश करने वाली है । नव यौवन द्वारा परिवर्तित (अर्थात् राग-द्वेषादि से युक्त किये हुए) मन को जल की भाँति वे ही भोग्य वस्तुएँ आस्वादित होने पर मधुर प्रतीत होती हैं (अर्थात् जैसे जल मधुर न होने पर भी कषायरसयुक्त जिह्वा को मधुर प्रतीत होता है उसी तरह भोग्य वस्तुएँ मधुर न होने पर भी अनुरक्त मन को मधुर लगती हैं) । दिग्भ्रम की तरह कुपथ पर चलाने वाली विषयों की अत्यन्त आसक्ति मनुष्य को विनष्ट कर देती है ।

टिप्पणी—ईश्वरत्वम्—ईश्वरस्य भावः इत्यर्थे ईश्वर+त्व । 'गर्भेश्वरत्वम्......' इस वाक्य में हेतुमान् अलंकार है । 'सर्वा......' यह वाक्य गर्भेश्वरत्व आदि के अनर्थहेतुत्व को सिद्ध करता है । **समवाय**=समूह । 'समुदायः समुदयः समवायश्चयो गणः' इत्यमरः । सम्-अव√इ (गति)+अच् । यहाँ जैसा भाव है वैसा हितोपदेश में भी मिलता है—'यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता । एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥' **प्रक्षालन**—धोना प्र√क्षाल् (धोना) णिच्+ल्युट्—(अन) । **कालुष्य**—मलिनता । कलुषस्य भावः इत्यर्थे कलुष+ष्यञ् । 'शास्त्रजल......' इस वाक्य के 'शास्त्रमेव जलम्'

इस खंड में निरंगकेवलरूपक अलंकार है और 'निर्मलापि कालुष्यमुपयाति' इस खंड में विरोधाभास अलंकार है। फिर दोनों में अंगांगिभाव संबंध होने से संकर अलंकार हो जाता है। अनुज्झिता—न त्यागी हुई।√उज्झ् (त्यागना) +क्त—टाप्=उज्झिता, न उज्झिता अनुज्झिता। यूनाम्—युवकों की। युवन् शब्द के षष्ठी-बहुवचन का यह रूप है। 'अनुज्झित......' इस वाक्य में विरोधाभास अलंकार है। 'अपहरति......इस वाक्य में उपमा अलंकार है। **वात्या**—बवंडर। वात+य—टाप्। **समुद्भूतरजोभ्रान्तिः**—रजसा भ्रान्तिः (तृ० त०) समुद्भूता रजोभ्रान्तिः यस्याम् (ब० स०)। पक्षे—रजसां भ्रान्तिः (ष० त०)समुद्भूता रजोभ्रान्तिः यस्याम् (ब० स०) भ्रान्तिः=भ्रमः; अतस्मिन् तद्बुद्धिः भ्रमः उच्यते। वात्यापक्षे—भ्रान्तिः=घूर्णनम्, चक्कर खाना। 'इन्द्रिय.........' इस वाक्य में परम्परित रूपक अलंकार है। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे मरुस्थल में दोपहर के समय सूर्यकिरणों की चमक देखकर प्यासा मृग जल की भ्रान्ति से उसके पीछे दौड़ते-दौड़ते अपना प्राण गवां बैठता है. उसी तरह अविवेकी युवक रमणी आदि के संभोग के पीछे सब कुछ खोकर विनष्ट हो जाता है। **अतिदुरन्ता**—परिणाम में अत्यन्त-दुःखदायिनी, जिसका परिणाम बहुत बुरा हो। अतिदुष्टः अन्तः यस्याः सा (ब० स०)। **मृगतृष्णिका**—कड़ी धूप में रेतीले मैदानों में होने वाली जलधारा की मिथ्या प्रतीति। 'नवयौवन......' और 'नाशयति......' इन दोनों वाक्यों में उपमा अलंकार है। **नवयौवनकषायितात्मनः**—नवञ्च तत् यौवनम् (कर्म० स०) नवयौवनेन कषायितः आत्मा यस्य (ब० स०) तस्य। इस वाक्य का तात्पर्य यह है कि जैसे हर्रे आदि खाने से जिह्वा का स्वाद कसैला हो जाने पर जल पीने से वह मीठा मालूम होता है जब कि जल का स्वाभाविक गुण माधुर्य नहीं है, उसी तरह नवयौवन के कारण विषयों में अनुरक्त युवा पुरुष के मन को भोग्य पदार्थ मीठे मालूम होते हैं जब कि वस्तुतः वे वैसे नहीं हैं। **कषायित**—कसैला किया हुआ। कषायं करोति इति कषाय+णिच्+क्त। **आस्वाद्यमान**—वह, जिसका स्वाद लिया जा रहा हो। आ√स्वाद् (चखना) +कर्मणि लट्+यक्+शानच्, मुगाम। **मधुरतराणि**—अपेक्षाकृत मधुर। मधुर +तरप्। **दिङ्मोह**—दिशा संबंधी भ्रम, दिशाओं का न पहचाना जाना। दिशां मोहः (ष० त०)। **मोह**—√मुह् (विवेक खो देना)+घञ्।

भवादृशा एव भवन्ति भाजनानि[1] उपदेशानाम्। अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेन[2] उपदेशगुणाः। गुरुवचनमलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य। इतरस्य तु[3] करिण इव शङ्खाभरणमाननशोभासमुदयमधिकतरमुपजनयति। हरति च सकलम्[4] अतिमलिनमप्यन्धकारमिव[5] दोषजातं प्रदोषसमयनिशाकर इव। गुरूपदेशः प्रशमहेतुर्वयः[6] परिणाम इव पलितरूपेण शिरसिजजालममलीकुर्वन् गुणरूपेण तदेव परिणमयति।

संस्कृत टीका—भवादृशा एव—त्वादृशा एव जना इति शेषः, उपदेशानाम्—शिक्षाणाम्, भाजनानि—पात्राणि, भवन्ति—जायन्ते। हि—यतः, अपगतमले—अपगतः (शास्त्रोपदेशेन) दूरीभूतः मलः कालुष्यं कामक्रोधादिरित्यर्थः यस्मात् (ब० म०) तथाविधे, मनसि—चेतसि, स्फटिकमणौ—स्फटिकरत्ने, रजनिकरगभस्तयः—रजनिकरः चन्द्रः तस्य गभस्तयः किरणानि (ष० त०), इव—तद्वत्, उपदेशगुणाः—शिक्षागुणाः, सुखेन—अनायासेन, विशन्ति—प्रविशन्ति। गुरुवचनम्—गुरोः आचार्यस्य वचनम् वाक्यम् (ष० त०), अलमपि—कल्याणकारि अपि, सलिलमिव—जलमिव, अभव्यस्य—असाधोः असंस्कृतजनस्येति यावत्, श्रवणस्थितं—कर्णगतं, (सत्), महत्—अत्यन्तम् शूलं—वेदनाम्, उपजनयति—उत्पादयति। तु—पुनः, इतरस्य—अभव्यतरस्य सुसंस्कृतजनस्येति यावत्, (गुरुवाक्यम्), करिणः—हस्तिनः, शङ्खाभरणमिव—शङ्खस्य आभूषणमिव, अधिकतरम्,—अतिशयम्, आननशोभासमुदयम्—आननस्य मुखस्य शोभा सौन्दर्यम् (ष० त०) तस्याः समुदयः समूहः (ष० त०)

---

(१) भाजनम्। (२) सुखम्। (३) च। (४) अपहरति च सकलम्, हरत्यति......। (५) अतिमलिनमन्धकारमिव। (६) क्वचित् वयः पदं न दृश्यते।

तम्, उपजनयति—उत्पादयति । च—किञ्च, (गुरुवचनम्), प्रदोषसमयनिशाकरइव—प्रदोषसमयः रजनीमुखकालः सूर्यास्तानन्तरकाल इति यावत् तस्य निशाकरः चन्द्रः (ष० त०) इव, अतिमलिनमपि—अतिशयश्याममपि, अन्धकारमिव—तिमिरमिव, सकलं—समस्तं, दोषजातं—दूषणसमूहम् कामक्रोधादिसमूहमित्यर्थः, हरति—अपाकरोति । प्रशमहेतुः—प्रशमस्य शान्तेः हेतुः कारणं (ष० त०), गुरूपदेशः—गुरोः शिक्षा, पलितरूपेण—शुक्लतारूपेण, शिरसिजजालम्—कचकलापम्, अमलीकुर्वन्—निर्मलीकुर्वन्, वयः परिणाम इव—वयसः अवस्थायाः परिणामः परिणतिः (ष० त०) इव, तदेव—दोषजातं, गुणरूपेण परिणमयति—वैशिष्ट्यरूपेण अवस्थान्तरं गमयति भूषणंकरोतीत्यर्थः ।

हिन्दी अनुवाद—आप जैसे (व्यक्ति) ही उपदेशों के पात्र होते हैं। क्योंकि उपदेश के गुण निर्मल अन्तःकारण में उसी तरह अनायास प्रवेश करते हैं जैसे स्फटिक मणि में सूर्य की किरणें। गुरु का कल्याणकारी वचन भी अशिष्ट (व्यक्ति) के कान में पड़ने पर जल की भाँति बड़ी पीड़ा उत्पन्न करता है । किन्तु (वही वचन) इतर (अर्थात् शिष्ट व्यक्ति) के मुख की शोभा-राशि को हाथी के शंखाभूषण की भाँति और अधिक बढ़ा देता है । फिर प्रदोषकाल के चन्द्रमा की तरह (गुरु-वचन) अत्यन्त कृष्ण अन्धकार के समान समस्त दोष-समूह को भी दूर कर देता है। गुरु का शान्तिजनक उपदेश केश-समूह को पकने के रूप में निर्मल करती हुई वृद्धावस्था की भाँति उसी (दोष-समूह) को गुण रूप में परिणत कर देता है।

टिप्पणी—**भवादृशाः**—आप के समान। भवत्√दृश् (देखना)+कञ् 'त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ् च' इत्यनेन, ततः 'आ सर्वनाम्नः' इत्यनेन आत्वम् । **भाजन**—पात्र । 'पात्रामत्रं च भाजनम्' इत्यमरः। **अपगत**—अप √गम् (जाना)+क्त । **रजनिकरगभस्तयः**—करोतीति करः√कृ (करना)+अच्, रजन्याः करः रजनिकरः=चन्द्रः (ष० त०) 'बह्वादिभ्यश्च' सूत्र से ङीष् विकल्प से होने के कारण 'रात्रि' और 'रात्री' की तरह 'रजनि' और 'रजनी' दोनों शब्द होते हैं। **गभस्ति**=किरण। 'किरणोऽस्रमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः' इत्यमरः। 'अपगत......' इस वाक्य में उपमा अलंकार है । **अलं**=हितकर । 'अलं शक्तौ च निर्दिष्ट कल्याणे च सुखेऽपि च' इति विश्वः । **श्रवणस्थित**=

कर्ण-कुहर में पहुँचने पर। **अभव्य**=दुःशील, अशिष्ट। **करिन्**=हाथी। करः=शुण्डः अस्ति अस्य इति विग्रहे कर+इनि। 'मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी' इत्यमरः। **शङ्खाभरण**=शंखों का आभूषण। लोक रीति के अनुसार नजर लगने से बचाने के लिए हाथी के कान में शंख भूषण बाँध दिया जाता है। **समुदय**=समूह। 'समुदायः समुदयः समवायश्चयो गणः' इत्यमरः। सम्—उद्√इ (गति)+अच्। **प्रदोषसमयनिशाकरः**=प्रदोषकालिक चन्द्रमा। प्रदोष=सायंकाल। 'प्रदोषो रजनीमुखम्' इत्यमरः। प्र√दुष्+घञ्। **प्रशमहेतुः**—भीतरी इन्द्रियों को विषय से रोकने का कारण। 'अन्तरिन्द्रियनिग्रहः=प्रशमः'। प्र√शम्+घञ्। **वयः परिणाम**=वृद्धावस्था। पलित—वृद्धावस्था के कारण बालों का पकना या सफेद होना, यहाँ तात्पर्य यह है कि बालों का पकना बुरा है किन्तु वृद्धावस्था में वह बुरा नहीं माना जाता प्रत्युत उसकी शोभा होती है उसी तरह काम, क्रोध आदि दोष हैं किन्तु गुरु का उपदेश काम को धर्मार्जन में, क्रोध को दंड में और लोभ आदि को स्वर्ग आदि की प्राप्ति में लगाकर उक्त दोषों को गुणों में परिवर्तित कर देता है। 'गुरुवचन......' से लेकर 'गुरूपदेश......' तक के वाक्यों में उपमा अलंकार है।

अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य। कुसुमशर[1] शरप्रहार[2] जर्जरिते हि[3] हृदये[4] जलमिव गलत्युपदिष्टम्। अकारणञ्च भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं वा विनयस्य[5]। चन्दनप्रभवो[6] न दहति किमनलः, किं वा प्रशमहेतुनापि न प्रचण्डतरीभवति बडवानलो वारिणा।

संस्कृत टीका—अनास्वादितविषयरसस्य—न आस्वादितः न उपभुक्तः अनुभवविषयीकृतो वा विषयरसः सांसारिकभोग्यपदार्थगुणः येन तस्य (न० ब० स०), ते—तव, अयमेव—एष एव, उपदेशस्य—शिक्षायाः, कालः—समयः (विद्यते)। हि—यतः, कुसुमशरशरप्रहारजर्जरिते—कुसुमशरः कन्दर्पः

---

(१) क्वचित् 'शर' इति पदं नोपलभ्यते। (२) संप्रहार। (३) क्वचित् 'हि' पदं न वर्तते। (४) हृदि। (५) श्रुतंचाविनयस्य। (६) चन्दनप्रभवोऽपि।

तस्य शराः बाणाः (ष० त०) तेषां प्रहाराः आघाताः (ष० त०) तैः **जर्जरितम्** शिथिलीभूतम् (तृ० त०) तस्मिन्, **हृदये**—मनसि, **जलमिव**—पानीयमिव, **उपदिष्टम्**—उपदेशः, **गलति**—क्षरति । **च**—किंच, **दुष्प्रकृतेः**—दुःस्वभावस्य चरित्रहीनस्येति यावत्, **अन्वयः**—सत्कुलम्, **वा**—अथवा, **श्रुतं**—शास्त्रं, **विनयस्य**—नम्रतायाः, **अकारणं भवति**—हेतुर्न भवतीत्यर्थः । **चन्दनप्रभवः**—चन्दनं मलयजतरुः तस्मात् प्रभवः उत्पत्तिः यस्य तथाविधः (ब० स०), **अनलः**—अग्निः, **किं न दहति**—किं न भस्मीकरोति अपि तु दहत्येवेत्यर्थः, **किं वा**—अथवा, **प्रशमहेतुनापि**—शान्तिकारणभूतेनापि, **वारिणा**—जलेन, **वडवानलः**—वाडवाग्निः, **न प्रचण्डतरीभवति**—न समुद्दीप्तो भवति अपि तु भवत्येवेत्यर्थः ।

हिन्दी अनुवाद—विषय का उपभोग या अनुभव न किये हुए तुम्हारे (लिए) उपदेश (देने) का यही समय (उचित) है। क्योंकि कामदेव के बाणों के आघात से जर्जर हुए हृदय में से उपदेश जल की भाँति चू जाता है। दुःशील (व्यक्ति) का उत्तम वंश (अर्थात् कुलीनता) एवम् शास्त्र (का ज्ञान) विनम्रता (या सन्मार्गप्रवृत्ति) का कारण नहीं होता। क्या चन्दन से उत्पन्न होने वाली अग्नि जलाती नहीं है? (अपि तु जलाती ही है)। अथवा क्या शमन के कारणभूत (अर्थात् शान्त करने वाले) जल से वाडवाग्नि और अधिक प्रचंड नहीं हो जाती है? (अपितु होती ही है)।

टिप्पणी—अनास्वादितविषयरसस्य—वह, जिसने कांचन-कामिनी आदि विषयों का रसास्वादन नहीं किया है। आ√स्वाद् (चखना) +क्त=आस्वादित। **कुसुमशरशरप्रहारजर्जरिते**—कुसुमानि पुष्पाणि एव शराः बाणाः यस्य सः (ब० स०)=कामदेवः। **प्रहार**—प्र√हृ+घञ् जर्जरित—जर्जर+णिच्+क्त। **हि**—यह हेत्वर्थक अव्यय है। 'हि हेतावधारणे' इत्यमरः। **गलति**=बह जाता है अथवा चालनीन्याय से निकल जाता है। जैसे छलनी में पानी का टिकना असंभव है उसी प्रकार कामबाण-जर्जरित हृदय में गुरु का उपदेश नहीं टिक पाता है। 'कुसुमशर......' इस वाक्य में उपमा अलंकार है। **दुष्प्रकृतेः**—दुष्टा प्रकृतिर्यस्य स दुष्प्रकृतिः (ब० स०), तस्य। दुष्ट स्वभाव मनुष्य को विनम्र नहीं होने देता है। क्योंकि 'अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि

तंते' इस न्याय से वह सब गुणों को दबाकर अपना ही प्रभाव दिखाता है। **अकारणम्**—कारण नहीं। यहाँ 'न' को प्रधान होना चाहिए किन्तु समास के कारण वह गौण हो गया है। अतएव 'असूर्यम्पश्या राजदारा' की तरह यहाँ विधेयाविमर्श दोष लगता है। इसका समाधान 'कारणं न भवति' ऐसा पाठ करने से ही हो सकता है। **प्रशमहेतुना**—प्रशमस्य हेतुः (ष० त०), तेन तथाभूतेन। **प्रशम**—शान्त करना, शमन। प्र√शम्+णिच्+घञ्। **प्रचण्डतरीभवति**—प्रचण्ड+तरप्, प्रचण्डतर+च्वि, इत्व, दीर्घ√भू+लट्+ति। **वडवानल**—वडवामुखस्थितः अनलः वडवानलः (मध्य० स०)। कहते हैं कि एक बार और्व नामक मुनि अग्नि में अपना ऊरु (जाँघ) डालकर कुश से मन्थन करने लगे। अनन्तर उनके ऊरु से अग्नि उत्पन्न हुई जो संसार को जलाने लगी। जब ब्रह्मा ने यह देखा तो मुनि को किसी तरह शान्त किया और उस अग्नि को समुद्र-गर्भ-स्थित वडवा (घोड़ी) के मुँह में स्थापित करके उसके भक्ष्य के लिए समुद्र का जल निर्दिष्ट कर दिया। (मत्स्य पुराण)। 'चन्दनप्रभवो...' इस वाक्य में अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

गुरूपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षममजलस्नानम्,[1] अनुपजातपलितादिवैरूप्यमजरं वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोषं[2] गुरूकरणम्, असुवर्णविरचनमग्राम्यं[3] कर्णाभरणम्, अतीत[4] ज्योतिरालोकः, नोद्वेगकरः प्रजागरः। विशेषेण[5] राज्ञाम्। विरला हि तेषामुपदेष्टारः। प्रतिशब्दक इव[6] राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्। उद्दामदर्पश्वयथुस्थगित[7] श्रवणविवराश्चोपदिश्यमानमपि[8] ते न शृण्वन्ति। शृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेनावधीरयन्तः[9] खेद-

---

(१) अजलं स्नानम्। (२) अङ्गदोषम्। (३) विरचनाग्राह्यम्। (४) अपनीत...। (५) अत्र 'तु' इत्यधिकः पाठो दृश्यते। (६) एव। (७) उद्दामदर्पाश्व पृथुस्थगित; दर्पाश्चयंसंस्थगित। (८) उपदिश्यमपि। (९) अवधारयन्तः।

यन्ति हितोपदेशदायिनो गुरून् । अहङ्कारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता विह्वला हि राजप्रकृतिः, अलीकाभिमानोन्मादकारीणि धनानि, राज्यविषविकारतन्द्रीप्रदा[1] राजलक्ष्मीः[2] ।

संस्कृत टीका—च—किञ्च, गुरूपदेशः—गुरूणाम् हितोपदेष्टॄणाम् उपदेशः शिक्षा (ष० त०), नाम—कोमलामन्त्रणार्थकमव्ययमिदम्, पुरुषाणाम्—जनानाम्, अखिलमलप्रक्षालनक्षमम्—अखिलः समस्तः यो मलः कालुष्यम् कामक्रोधादिरित्यर्थः (कर्म० स०) तस्य प्रक्षालनं शुचीकरणं (ष० त०) तस्मिन् क्षमम् समर्थम् (स० त०), अजलस्नानम्—जलरहितस्नानम्, अनुपजातपलितादिवैरूप्यम्—अनुपजातम् अनुत्पन्नम् पलितादि वार्धक्यप्रयुक्तकेशश्वेतत्वादि वैरूप्यं विकृतिर्यस्मिन् तत् तादृशम् (ब० स०), (तथा अजरम्—न विद्यते जरा जीर्णत्वं यस्मिन् तथाभूतम् (ब० स०), वृद्धत्वम्—स्थविरत्वम्, अनारोपितमेदोदोषम्—न आरोपितः उत्पादितः मेदोदोषः स्थूलत्वोत्पादकमेदोनामकधातुवृद्धिदोषो येन तत् तथाविधम् (न० ब० स०), गुरूकरणम्—गौरवहेतुः, असुवर्णविरचनम्—न सुवर्णेन स्वर्णेन विरचना निर्माणं यस्य तत् तादृशम् (न० ब० स०), अग्राम्यम्—ग्राम्यत्वदोषरहितम् प्रशस्यमित्यर्थः, कर्णाभरणम्—कर्णभूषणम्, अतीतज्योतिः—अतीतं गतं ज्योतिः तेजः यस्मात् स एवंभूतः (ब० स०), आलोकः—प्रकाशः, नोद्वेगकरः—न सन्तापजनकः, प्रजागरः—जागरणम् । राज्ञां—नृपाणाम्, विशेषेण—आधिक्येन (गुरूपदेशः उपकारी भवति) । हि—यतः, विरलाः—अल्पाः (एव), तेषां राज्ञाम्, उपदेष्टारः—उपदेशदातारः (भवन्ति) । प्रतिशब्दक इव—प्रतिध्वनिरिव, जनः—लोकः, भयात्—त्रासात्, राजवचनं—राज्ञः नृपस्य वचनं वचः (ष० त०), अनुगच्छति—अनुसरति (न तु प्रत्युत्तरं दातुं समर्थ इति भावः) । उद्दामदर्पश्वयथुस्थगितश्रवणविवराः—उद्दामाः उत्कटाः दर्पाः अहंकाराः एव श्वयथवः शोथाः तैः स्थगितानि आच्छादितानि श्रवणविवराणि कर्णच्छिद्राणि येषां ते तथाविधाः, ते—राजानः, उपदिश्यमानमपि—कथ्यमानमपि, न शृण्वन्ति—न आकर्णयन्ति । शृण्वन्तोऽपि—आकर्णयन्तोऽपि, गजनिमीलितेन—

(१) ......तन्द्राप्रदा विषतन्द्री । (२) राज्यलक्ष्मीः ।

गजः हस्ती तद्वत् यत् निमीलितं नेत्रसंकोचः तेन, अवधीरयन्तः—अवहेलनां कुर्वन्तः, हितोपदेशदायिनः—कल्याणशिक्षादातॄन्, गुरून्, खेदयन्ति—क्लेशयन्ति। हि—यतः, राजप्रकृतिः—राज्ञां स्वभावः, अहंकारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता—अहंकारः दर्पः स एव दाहज्वरः तीव्रतापः तेन या मूर्च्छा मोहः तया अन्धकारिता अंधकार इव आचरिता, (अतएव) विह्वला—व्याकुला (भवति)। धनानि—सम्पदः, अलीकाभिमानोन्मादकारीणि—अलीकः मिथ्या यः अभिमानः गर्वः तेन उन्मादः मत्तता तं कर्तुं शीलं येषां तानि तथाविधानि (भवन्ति)। राजलक्ष्मीः—राज्ञः श्रीः, राज्यविषविकारतन्द्रीप्रदा—राज्यम् आधिपत्यम् एव विषं गरलं तस्मात् यो विकारः तेन तन्द्रीम् निद्राजन्यालस्यं प्रददाति या सा तथाभूता (भवति)।

हिन्दी अनुवाद—गुरु का उपदेश मनुष्यों के सम्पूर्ण मल को धोने में समर्थ जलविहीन स्नान है, बालों के पकने आदि के कारण होने वाली कुरूपता एवं जीर्णता से रहित बुढ़ापा है बिना मदोदोष (भारी मोटापन) के गुरुत्व उत्पन्न करने वाला है, सोने का न बना हुआ एवं ग्राम्यता (दोष) से रहित कानों का आभूषण है, बिना तेज का प्रकाश है और उद्वेग उत्पन्न न करने वाला जागरण है। विशेष करके राजाओं के लिए, (गुरु का उपदेश अत्यन्त लाभकारी होता है)। क्योंकि उनको उपदेश देने वाले बिरले (मनुष्य) होते हैं। भय से मनुष्य प्रतिध्वनि की तरह राजा के वचन का अनुसरण करते हैं। किन्तु उत्कट गर्व रूपी सूजन से ढके हुए कानों के छेद वाले वे (राजा लोग) कहे जाते हुए (वचन) को भी नहीं सुनते। सुनते हुए भी गजनिमीलिका (लापरवाही) से अवहेलना करते हुए (वे) हित की बात बताने वाले गुरुओं को क्लेश पहुँचाते हैं। राजा का स्वभाव अभिमान रूपी तीव्रताप से उत्पन्न होने वाली मूर्च्छा के कारण अन्धकार तुल्य बना हुआ (अर्थात् विवेकशून्य) एवं व्याकुल रहता है, सम्पत्तियाँ मिथ्या अभिमान के कारण उन्माद उत्पन्न करने वाली होती हैं और राजलक्ष्मी राज्य रूपी विष के विकार से उत्पन्न तन्द्रा प्रदान करती है।

टिप्पणी—अजलस्नानम्—भाव यह है कि जहाँ अन्य स्नान जलसहित होता है वहाँ गुरूपदेश रूप स्नान जलरहित होता है। यही इसमें विशेषता है। अतएव इसमें अधिकारूढ़शिष्ट्यरूपक अलंकार है। इसी प्रकार यहाँ

आगे भी 'प्रजागरः' तक तत्तत् वस्तुओं मे गुरूपदेश में विशिष्टता होने के कारण यही अलंकार समझना चाहिए । गुरूकरणम्=स्थूल या गौरवान्वित करना । गुरु+च्वि, दीर्घ √कृ+ल्युट्—अन । विरचना—वि √रच्+णिच्+युच्—अन, टाप् । अग्राम्यम्—ग्राम्+ष्यञ्=ग्राम्यम् न ग्राम्यम् अग्राम्यम् (न० त०) । प्रजागरः=जागना । प्र √जागृ (निद्राक्षये) +अप् । उपदेष्टारः—उप √दिश्+तृच् (प्रथमा बहुवचन) । प्रतिशब्दकः—शब्दं प्रतिगत. इति प्रतिशब्दः (प्रा० स०), प्रतिशब्दः एव प्रतिशब्दकः प्रतिशब्द+क (स्वार्थे) 'प्रतिशब्दक…' इस वाक्य में उपमा अलंकार है । उद्दामदर्पश्वयथुस्थगितश्रवणविवराः—श्रवणस्य विवराणि (ष० त०), उद्दामाश्च ते दर्पाः (कर्म० स०), उद्दामदर्पा एव श्वयथवः (मयू० स०), तैः स्थगितानि श्रवणविवराणि येषां ते (ब० स०) । उद्दाम—उद्गताः दाम्नः इति उद्दामाः (प्रा० स०) । श्वयथु=सूजन । √श्वि (वृद्धि) + अथुच् । स्थगित—आच्छादित । √स्थग् (संवरण) + क्त । श्रवणविवर—कान का बिल, कर्णकुहर । उपदिश्यमानम्—उप √दिश्+लट् (कर्मणि) +यक्+शानच्, मुगागम । 'उद्दाम…' इस वाक्य में निरङ्गकेवलरूपक अलंकार है । गजनिमीलित=न देखने का बहाना; लापरवाही । गजस्य यन्निमीलितं तद्वन्निमीलितेनेत्यर्थः । अवधीरयन्तः=तिरस्कार करते हुए । अव √धीर्+णिच्+लट् शतृ (प्रथमा बहुवचन) । हितोपदेशदायिनः—हितानाम् उपदेशः (ष० त०), तं दातुं शीलमेषाम् इत्यर्थे हितोपदेश √दा+णिनि (द्वितीया बहु०) । 'शृण्वन्तोऽपि……' इस वाक्य में लुप्तोपमा अलंकार है । अहङ्कारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता—अहङ्कार एव दाहज्वरः (मयू० स०) तेन मूर्च्छा (तृ० त०) या तद्धेतुका मूर्च्छा (मध्य० स०) तया अन्धकारिता (तृ० त०) । अन्धकारिता—अन्धकार इव आचरति इति अन्धकारति (नामधातु), अन्धकार+क्विप्+क्त—टाप् । अलीकाभिमानोन्मादकारीणि—अलीकः अभिमानः (कर्म० स०) तज्जन्यः उन्मादः (मध्य० स०) तं कर्तुं शीलमेषाम् इति विग्रहे अलीकाभिमानोन्माद √कृ+णिनि (प्रथमा बहु०) । राज्यविषविकारतन्द्रीप्रदा—राज्यम् एव विषम् (मयू० स०) तदुत्पन्नः विकारः (मध्य० स०) तज्जन्या तन्द्री (मध्य० स०) तस्याः प्रदा (ष० त०) । 'अहङ्कार……' इस वाक्य में निरङ्गकेवलरूपक अलंकार है ।

आलोकयतु तावत्-कल्याणाभिनिवेशो लक्ष्मीमेव प्रथमम् । इयं हि सुभट[1] खड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रम[2] भ्रमरी लक्ष्मीः क्षीरसागरात् पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुशकलादेकान्त-वक्रताम्, उच्चैःश्रवसश्चञ्चलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम्, मदिराया मदम्, कौस्तुभमणेरतिनैष्ठुर्यम्,[3] इत्येतानि सह-वासपरिचयवशाद्विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वेवोद्गता[4] ।

संस्कृत टीका—कल्याणाभिनिवेशः—कल्याणे मङ्गले अभिनिवेशः आग्रहः यस्य स तथाभूतः (ब० स०), (भवान्) तावत्—इति वाक्यालङ्कारे, प्रथमम्—आदौ, लक्ष्मीम् एव—श्रियम् एव, आलोकयतु—पश्यतु । हि—निश्चितम्, सुभटखड्गमण्डलोत्पलवनविभ्रमभ्रमरी—सुभटाः कुशल योद्धारः तेषां खड्ग-मण्डलम् असिसमूहः (ष० त०) तदेव उत्पलवनं कमलवनम् (मयू० स०) तस्मिन् विभ्रमः विचरणम् (स० त०) तस्मिन् भ्रमरी मधुकरी (स० त०), इयं—साक्षात्, लक्ष्मीः—श्रीः, पारिजातपल्लवेभ्यः—मन्दारकिसलयेभ्यः, रागम्—रक्तिमानम् लोकानुरागं वा (गृहीत्वा इव क्षीरसागरात् उद्गता । एवम् अन्यत्रापि अन्वयः कार्यः), इन्दुशकलात्—चन्द्रखण्डात्, एकान्तवक्रताम्—अतिकुटिलताम्, उच्चैःश्रवसः—इन्द्राश्वात्, चञ्चलताम्—चपलताम्, कालकूटात्—हलाहल-विषात्, मोहनशक्तिम्—मूर्च्छोत्पादनसामर्थ्यम्, मदिरायाः—मद्यात्, मदम्—उन्मत्तताम्, कौस्तुभमणेः—विष्णोः कण्ठरत्नस्य सकाशात्, अतिनैष्ठुर्यम्—नितान्तकठोरत्वम् इत्येतानि—रागादीनि, सहवासपरिचयवशात्—सहवासः एकत्र स्थितिः तेन परिचयः सम्बन्धविशेषः (तृ० त०) तस्य वशात् कारणात् (ष० त०), विरहविनोदचिह्नानि—विरहस्य विनोदचिह्नानि अपनोदनलक्षणानि, गृहीत्वा इव आदाय इव, क्षीरसागरात्—दुग्धसमुद्रात्, उद्गता—उत्थिता ।

हिन्दी अनुवाद—कल्याण के आग्रही (या अतिशय इच्छुक) आप पहले लक्ष्मी को ही देखें । निपुण योद्धाओं की तलवारों के समूह रूप कमल-वन में

---

(१) क्वचित् सुभटपदं न दृश्यते । (२) विभ्रम । (३) नैष्ठुर्यम् । (४) गृहीत्वैवोद्गता ।

विचरण करने वाली भ्रमरी तुल्य यह लक्ष्मी मानो पारिजात के नये पत्तों से राग (लालिमा, अनुराग), चन्द्र-खंड से अत्यंत कुटिलता उच्चैःश्रवा से चंचलता, कालकूट से मोहन-शक्ति (मूच्छित करने की शक्ति, वशीकरण करने की शक्ति), मदिरा से मादकता और कौस्तुभमणि से अत्यंत कठोरता रूप चिह्नों को, जो एक साथ रहने के कारण परिचयवश वियोग दूर करने वाले थे, लेकर क्षीर-सागर से निकली थी।

टिप्पणी—अभिनिवेश=आग्रह, उत्कट या दृढ़ अनुराग। अभि—नि√विश्+घञ्। **उत्पल**=कमल। **भ्रमरी**—मादा भौंरा। **पारिजात**=पाँच देव-वृक्षों में से एक। 'पञ्चैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः। सन्तानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम्॥' इत्यमरः। **इन्दुशकलात्**=चन्द्रमा के भाग या खंड से। 'भित्तं शकलखण्डे वा' इत्यमरः। **उच्चैःश्रवस्**—यह इन्द्र के घोड़े का नाम है। उच्चैः उन्नते श्रवसी कर्णौ यस्य स उच्चैःश्रवाः (ब० स०)। **कालकूट**—हलाहल नामक विष। **मदिरायाः**—मद्य से। 'मदिरा कश्यमद्ये च' इत्यमरः। √मद्+किरच्—टाप्। **कौस्तुभमणि**—विष्णु की मणि का नाम। 'कौमोदकी गदा खड्गो नन्दकः कौस्तुभो मणिः' इत्यमरः। **अतिनैष्ठुर्य**—निष्ठुरस्य भावः नैष्ठुर्यम्, निष्ठुर+ष्यञ्, अतिमात्रां गतं नैष्ठुर्यम् 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इत्यनेन प्रादिसमासः। **सहवासपरिचयवशात्**—एक जगह रहने से उत्पन्न हुई घनिष्ठता के कारण। पुराणों के अनुसार लक्ष्मी, पारिजात वृक्ष, चन्द्रमा, उच्चैःश्रवा, कालकूट, मदिरा और कौस्तुभमणि—ये सब समुद्र-मन्थन करने पर क्षीरसागर से निकले थे। अतएव क्षीरसागर में पारिजात आदि के साथ रहने के कारण लक्ष्मी ने मानो उनके वे धर्म ग्रहण कर लिये हैं, ऐसी उत्प्रेक्षा यहाँ की गई है। यहाँ 'सुभट......' इत्यादि में परम्परितरूपक अलंकार है। रक्तिमा और अनुराग प्रभृति में भेद होने पर भी श्लेष के कारण अभेद का निश्चय होने से अतिशयोक्ति, प्रदर्शितरूप रूपक और क्रियोत्प्रेक्षा नामक अलंकार हैं। फिर इनमें अंगांगिभाव संबन्ध होने के कारण संकर अलंकार हो जाता है।

नह्येवंविधमपरम्[1] अपरिचितमिह जगति किञ्चिदस्ति,[2]

---

(१) क्वचित् अपरमिति न दृश्यते। (२) क्वचित् किञ्चिदिति नास्ति।

यथेयमनार्या[1] लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते, दृढगुणपाश-[2] सन्दान-निष्पन्दीकृतापि नश्यति, उद्दाम-दर्प-भट-सहस्रोल्ला-सितासिलता[3] पञ्जर-विधृताप्यपक्रामति, मदजलदुर्दिनान्धकार-गज[4]-घनघटा परिपालितापि प्रपलायते, न परिचयं रक्षति, नाभिजनमीक्षते, न रूपमालोकयते,[5] न कुलक्रम-मनुवर्तते, न शीलं पश्यति, न वैदग्ध्यं गणयति, न श्रुत-माकर्णयति, न धर्ममनुरुध्यते, न त्यागमाद्रियते, न विशेषज्ञतां विचारयति, नाचारं पालयति नसत्यमवबुध्यते,[6] न लक्षणं प्रमाणीकरोति ।

संस्कृत टीका—इह जगति—अस्मिन् संसारे, एवंविधम्—एतादृशम्, अपरिचितम्—परिचयशून्यम्, परिचयनिबन्धबन्धुत्वनिरपेक्षमिति यावत्, अपरम्—अन्यत्, किञ्चित्—(वस्तु), नहि—न, अस्ति—विद्यते, यथा—येन प्रकारेण, इयम्—लक्ष्मीः, अनार्या—अश्रेष्ठा—(वर्तते)। (यतोहि लक्ष्मीः) लब्धापि—महता कष्टेन प्राप्तापि, दुःखेन—क्लेशेन, खलु—निश्चयेन, परिपाल्यते—परिपालनविषयीक्रियते । दृढगुणपाशसन्दाननिष्पन्दीकृतापि—दृढाः स्थिराः गुणाः शौर्यादयः त एव पाशः रज्जुः तल्लक्षणं सन्दानं बन्धनं तेन निष्पन्दीकृतापि निश्चलीकृतापि (इयं) नश्यति—क्षयं प्राप्नोति । उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापञ्जरविधृतापि—उद्दामः उत्कटः दर्पः अहंकारः येषाम् एवम्भूताः ये भटाः योद्धारः तेषां सहस्रं तेन उल्लासिता ऊर्ध्वीकृता या असिलताः खड्गलताः ता एव पञ्जरं पक्ष्यादिबन्धनगृहं तत्र विधृतापि स्थापितापि (लक्ष्मीः), अपक्रामति—अपसरति । मदजलदुर्दिनान्धकारगजघन घटापरिपालितापि—मदजल दानवारि तदेव कृष्णत्वसाम्यात् दुर्दिनान्धकारः मेघच्छन्नदिनतिमिरं

---

(१) अनार्या दुःखेन लभ्यते। (२) क्वचित् 'पाश' इति पद नोपलभ्यते । (३) उल्लसितासिलता......... । (४) गजघटितघनघटाटोप......... । (५) आलोकयति। (६) अनुबुध्यते।

तद्युक्ता ये गजाः हस्तिनः त एव घनाः मेघाः तेषां घटया समूहेन परिपालितापि रक्षितापि (लक्ष्मीः) प्रपलायते—पलायनं विदधाति। (सा) परिचयं—संस्तवं, न रक्षति—न पालयति। अभिजन—कुलं, न ईक्षते—न विलोकयति। रूपं—सौन्दर्यं न आलोकयति—न पश्यति। कुलक्रमम्—वंशपरिपाटीं, न अनुवर्तते—न अनुगच्छति। शीलं—सच्चरित्रं, न पश्यति—न अवलोकयति। वैदग्ध्यं—पाण्डित्य, न गणयति—न विचारयति। श्रुतम्—शास्त्रम्, न आकर्णयति—न शृणोति। धर्मम्—सुकर्मं, न अनुरुध्यते—न अनुसरति। त्यागम्—दानम्, न आद्रियते—न सम्मानयति। विशेषज्ञताम्—विशेषज्ञातृत्वम्, न विचारयति—न गणयति। आचारम्—शिष्टजनसेवितं मार्गम्, न पालयति—न रक्षति। सत्यम्—ऋतम्, न अवबुध्यते—न जानाति। लक्षणम्—ध्वजवज्रादिसामुद्रिकशास्त्रप्रतिपादितं, न प्रमाणीकरोति—ध्वजवज्रादिरेखया युक्तं पुरुषं नालम्बते इत्यर्थः।

हिन्दी अनुवाद—इस संसार में ऐसी कोई वस्तु अपरिचित (परिचय की उपेक्षा करने वाली) नहीं है जैसी कि यह नीच स्वभाव वाली (लक्ष्मी)। इसको पा लेने पर भी कष्ट से परिपालन करना होता है। सुदृढ़ गुण रूपी जाल के बन्धन से निश्चल कर देने पर भी यह खिसक जाती है। उत्कट महङ्कार से युक्त सहस्रों योद्धाओं द्वारा उठाई गई खड्गलता रूप पिंजरे में बन्द रखी जाने पर भी निकल जाती है। मद-जल रूप मेघाच्छन्न दिन के कारण अन्धकार उत्पन्न करने वाले गज रूपी मेघ के समूह से रोके जाने पर भी भाग जाती है। यह न परिचय की रक्षा (परवाह) करती है, न कुल (खानदान) देखती है, न सौन्दर्य देखती है, न वंश-परम्परा का अनुगमन करती है, न सच्चरित्रता देखती है, न पाण्डित्य का आदर करती है, न शास्त्र को सुनती है, न धर्म को मानती है, न त्याग को महत्त्व देती है, न विशेषता पर विचार करती है, न आचार का पालन करती है, न सत्य को जानती है और न (सामुद्रिक शास्त्र में कहे हुए भाग्य के) लक्षण को प्रमाणित करती है।

टिप्पणी—**दृढगुणपाशसन्दाननिष्पन्दीकृता**—(वीरता आदि या ठीक-ठीक प्रयोग में लाये गये सन्धि-विग्रह आदि) गुण रूपी पाश के बंधन से निश्चल की गई। दृढाः गुणाः (कर्म० स०) ते एव पाशाः (मयूरव्यंसकादि स०) तैः सन्दानम्

(सुप्सुपा स०) तेन निष्पन्दीकृता (तृ० त०)। न निष्पन्दा अनिष्पन्दा (नञ् तत्०) अनिष्पन्दा निष्पन्दा कृता इति निष्पन्द+च्वि, इत्व, दीर्घ√कृ+क्त—टाप्=निष्पन्दीकृता। यहाँ कोई विरोधाभास और निरंगकेवलरूपक अलंकारों का संकर मानते हैं और कोई विभावना एवं विशेषोक्ति में सन्देह होने से सन्देहसंकर अलंकार को निरंगकेवलरूपक से संकीर्ण कहते हैं। **उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापञ्जरविधृता**—उत्कट अभिमान वाले हजारों वीरों द्वारा उठाई गई लताकार तलवार रूपी पिंजरे में रखी गई। उद्दामः दर्पः येषाम् (ब० स०) तादृशाः भटाः (कर्म० स०) तेषां सहस्रम् (ष० त०) तेन उल्लासिता (तृ० त०) तथाभूता असिलता (कर्म० स०) असिः लता इव इति असिलता (उपमित स०) सा एव पिञ्जरम् (मयूरव्यंसकादि स०) तस्मिन् विधृता (स० त०)। यहाँ भी विभावना और विशेषोक्ति का सन्देहसंकर है, जो निरंगकेवलरूपक से संकीर्ण है। कोई तो यहाँ भी विरोधाभास और निरंगकेवलरूपक का संकर मानते हैं। **मदजलदुर्दिनान्धकारगजघनघटापरिपालिता**—मद-जल रूप दुर्दिन के अन्धकार से युक्त गज रूप मेघसमूह से परिरक्षित। मदजल=मस्त हाथी की कनपटी से झरने वाला जल, दान। दुर्दिन=मेघों से आच्छादित दिन। 'मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम्' इत्यमरः। मदजलानि एव दुर्दिनानि (मयू० स०) तेषाम् अन्धकारः (ष० त०) तद्युक्ताः गजाः (मध्य० स०) त एव घनाः (मयू० स०) तेषां घटा (ष० त०) तया परिपालिता (तृ० त०) यहाँ परम्परितरूपक अलंकार तथा विभावना और विशेषोक्ति का सन्देहसंकर है। फिर दोनों का अंगांगिभाव से संकर होता है।

गन्धर्वनगर[1] लेखेव पश्यत एव नश्यति। अद्याप्यारूढ-मन्दरपरिवर्त्तावर्त-भ्रान्तिजनित-संस्कारेव परिभ्रमति[2]। कमलिनीसञ्चरण[3] व्यतिकर-लग्न-नलिन-नाल-कण्टकक्षतेव[4] क्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम्। अतिप्रयत्नविधृतापि

---

(१) क्वचित् 'नगर' इति पदं न दृश्यते (२) भ्रमति। (३)........ सञ्चार..............। नालकण्टकेव, नालकण्टकेत्येव। (५) क्वचित् 'अपि' इति पदं नोपलभ्यते।

परमेश्वरगृहेषु विविध-गन्धगज-गण्ड-मधुपानमत्तेव परिस्खलति । पारुष्यमिवोपशिक्षितुमसिधारासु निवसति । विश्वरूपत्वमिव ग्रहीतुमाश्रिता नारायणमूर्तिम् ।

संस्कृत टीका—गन्धर्वनगर लेखा—दृष्टिभ्रमेण आकाशे नगरवदलोक्यमाना कापि रेखा हरिश्चन्द्रपुरीति यावत्, इव—तद्वत्, (इयं लक्ष्मीः) पश्यत एव—अवलोकयत एव (पुरुषस्य) नश्यति—नष्टा भवति। अद्यापि—इदानीमपि, आरूढमन्दरपरिवर्त्तावर्तभ्रान्तिजनितसंस्कारेव आरूढः प्राप्तः या मन्दरस्य मेरो परिवर्तः परिभ्रमः तज्जनितो य आवर्तः भ्रम्मसा भ्रमिः तस्मात् या भ्रान्तिभ्रमण तज्जनितः संस्कारः वेगाभिधो यस्या एवंविधा इव, परिभ्रमति—परिभ्रमण करोति गृहादन्यगृहं गच्छतीत्यर्थः। कमलिनीसञ्चरण व्यतिकरलग्ननलिननालकण्टकक्षतेव—कमलिनीषु कमललतासु सञ्चरणं भ्रमणं तस्य व्यतिकरः सम्पर्कः तेन लग्नानि नलिनानां कमलानां नालकण्टकानि तैः क्षता विदीर्णचरणा इव, क्वचिदपि—कुत्रापि, पदं—चरणं, निर्भरं—निश्चलं, न आबध्नाति—न निदधाति। परमेश्वरगृहेषु—महाराजभवनेषु, अतिप्रयत्नविधृतापि—अतिप्रयत्नेन महताऽयासेन विधृतापि—स्थिरीकृतापि, विविधगन्धगजगण्डमधुपानमत्तेव—विविधाः अनेकप्रकाराः ये गन्धगजाः गन्धहस्तिनः तेषां गण्डयोः कपोलयोः यानि मधूनि मद्यानि तेषां पानेन आस्वादेन मत्ता उन्मत्ता इव, परिस्खलति—भ्रश्यति। पारुष्यं—क्रूरत्वम्, उपशिक्षितुमिव—अभ्यसितुमिव, असिधारासु—खड्गधारासु, निवसति—निवासं करोति। विश्वरूपत्व—विश्वं ब्रह्माण्डं रूपं यस्य तत् विश्वरूपम् तस्य भावः तत्त्वं तत्, ग्रहीतुमिव आदातुमिव, नारायणमूर्तिम्—विष्णुशरीरम्, आश्रिता—प्राप्ता।

हिन्दी अनुवाद—(यह लक्ष्मी) गन्धर्वनगर की रेखा के समान देखते ही नष्ट हो जाती है। मानो मन्दराचल के घूमने से उत्पन्न भँवर के साथ घूमने के संस्कारवश आज भी घूमा करती है। मानो कमल-वन में विचरण करते समय कमल नाल के काँटे चुभ जाने के कारण कहीं भी जमकर पैर नहीं रखती है। महाराजाओं के भवनों में बड़े प्रयत्न से रखी जाने पर भी मानो अनेक प्रकार के गन्धगजों के गंड-स्थल के मद्य पीने से मत्त होकर स्खलित हो जाती

है (अर्थात् दूसरे राजाओं के पास चली जाती है)। मानो कठोरता सीखने के लिए तलवार की धार पर निवास करती है। मानो विश्वरूपता (अनेक प्रकार के रूप) धारण करने के लिए विष्णु के शरीर का आश्रय लिया है।

टिप्पणी—गन्धर्वनगरलेखा—दृष्टिदोष से आकाश में दिखाई देने वाला मिथ्या आभास रूप नगर, कल्पित नगर। इस नगर के देखने का फल यह होता है—'गन्धर्वनगरमुत्थितमापाण्डुरशनिपातवातकरम्। दीप्ते नरेन्द्रमृत्युर्वामेऽरिभयं जयः सव्ये ॥' (बृहत्संहिता)। इस वाक्य में उपमा अलंकार है। **आरूढमन्दर-परिवर्त्तावर्त्तभ्रान्तिजनितसंस्कारा**—मन्दराचल के घूमने से उत्पन्न भँवर में चक्कर काटने के कारण (घूमने के) संस्कार से युक्त। मन्दरस्य परिवर्त्तः (ष० त०) तज्जनितः आवर्त्तः (मध्य० स०) तस्मिन् भ्रान्तिः (स० त०) तया जनितः (तृ० त०) तथाविधः संस्कारः (कर्म० स०) आरूढः मन्दरपरिवर्त्ता-वर्त्तभ्रान्तिजनितसंस्कारो यस्याः सा (ब० स०)। इस वाक्य में क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है। **कमलिनीसञ्चरणव्यतिकरलग्ननलिननालकण्टकक्षता**—कमल-वन में विचरण करने के सम्पर्क से लगे हुए कमल-नाल के कंटकों से क्षत हुई। नलिनानां नालानि (ष० त०) तेषां कण्टकानि (ष० त०) कमलिनीषु संचरणम् (स० त०) तस्य व्यतिकरः (ष० त०) तेन लग्नानि (तृ० त०) तथाभूतानि नलिननालकण्टकानि (कर्म० स०) तैः क्षता (तृ० त०)। यहाँ अतिशयोक्ति और क्रियोत्प्रेक्षा का अंगांगिभाव रूप संकर अलंकार है। **विविधगन्धगजगण्डमधुपानमत्ता**—अनेक प्रकार के गंधगजों के गंडस्थल से बहने वाले मद के पान से मतवाली। गंधगज=वह हाथी जिसके कुंभ से मद झरता हो, श्रेष्ठ महाबली हाथी। मधु=मद्य यहाँ मद ही मद्य है। विविधाः गन्धगजाः (कर्म० स०) तेषां गण्डाः (ष० त०) तेषां मधु (ष० त०) तस्य पानम् (ष० त०) तेन मत्ता (तृ० त०)। यहाँ भी अतिशयोक्ति और क्रियोत्प्रेक्षा का संकर है। 'पारुष्यमिव.........' इस वाक्य में भी अतिशयोक्ति और क्रियोत्प्रेक्षा का संकर है। 'विश्वरूपत्वमि.........' इस वाक्य में क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है।

अप्रत्ययबहुला च दिवसान्त[1] कमलमिव समुपचित[2] मूल-

(१) दिवसान.........। (२) समुचि.........।

दण्ड-कोषमण्डलमपि मुञ्चति भूभुजम् । लतेव विटपकान-ध्यारोहति । गङ्गेव वसुजनन्यपि तरङ्गबुद्बुदचञ्चला, दिवसकरगतिरिव प्रकटितविविध-संक्रान्तिः । पातालगुहेव तमोबहुला । हिडिम्बेव[1] भीमसाहसैकहार्य्यहृदया । प्रावृडिवाचिरद्युतिकारिणी ।

संस्कृत टीका--च--पुनः, (इयं लक्ष्मीः) अप्रत्ययबहुला—अप्रत्ययः अविश्वासः बहुलः अधिकः यस्याम् एवंभूता सती, दिवसान्तकमलमिव—दिवसान्तस्य दिनावसानस्य कमलमिव पद्ममिव, समुपचितमूलदण्डकोषमण्डलमपि—समुपचितानि सम्यक्तया वृद्धिं प्राप्तानि मूलं विजयनिमित्तीभूतं सैन्यं पक्षे कन्दप्रदेशः, दण्डः उपायविशेषः पक्षे नालम्, कोषः धनं पक्षे मध्यभागः, मण्डलं राष्ट्रम् पक्षे परमण्डलम्, एतानि यस्य तं तथाभूतमपि, भूभुजम्--राजानम्, मुञ्चति—त्यजति । लता--वल्ली इव, (इयं) विटपकान्—धूर्तान् पक्षे वृक्षशाखाः, अध्यारोहति—आश्रयति । गङ्गा इव—जाह्नवी इव, (लक्ष्मीः) वसुजननीअपि—वसूनां धनानां पक्षे वसुनाम्ना प्रसिद्धानाम् अष्टदेवविशेषाणाम् जननी अपि—माता अपि, तरङ्गबुद्बुदचञ्चला—तरङ्गाः भङ्गाः बुद्बुदाः स्थासकाः तद्वत् चञ्चला चपला पक्षे तरङ्गबुद्बुदैः चञ्चला, दिवसकरगतिरिव—दिवसकरः सूर्यः तस्य गतिः गमनं सेव, (लक्ष्मीः) प्रकटितविविधसंक्रान्तिः—प्रकटिता दर्शिता विविधेषु अनेकप्रकारेषु लोकेषु संक्रान्तिः संचारो यया सा तादृशी पक्षे प्रकटिता विविधाः मेषादिद्वादशविधाः संक्रान्तयो राश्यन्तरसंक्रमणानि यया सा तादृशी । पातालगुहा इव—पातालकन्दरा इव, (लक्ष्मीः) तमोबहुला—तमः अज्ञानम् पक्षे अन्धकारः बहुलम् अधिकम् यस्याम् सा तथाविधा । हिडिम्बा इव—घटोत्कचमाता इव, (लक्ष्मीः) भीमसाहसैकहार्यहृदया—भीमसाहसेन अतिकठिनकर्मणा एकम् अद्वितीयं हार्यं हर्तुं शक्यं हृदयं चेतो यस्याः सा तादृशी पक्षे भीमः वृकोदरः तस्य यः साहसः तेन एकम् हार्यं हृदयं यस्याः सा तादृशी । प्रावृट्—वर्षाकालः सेव, (लक्ष्मीः) अचिरद्युतिकारिणी—

---

(१) हिडम्बेव ।

अचिरा स्वल्पकालीना या द्युतिः प्रकाशः तां कर्तुं शीलं यस्याः सा तथाभूता पक्षे अचिरद्युतिः विद्युत् तां कर्तुं शीलं यस्याः सा तादृशी।

हिन्दी अनुवाद—अत्यधिक अविश्वसनीया लक्ष्मी संध्याकालीन कमल की भाँति सम्यक् प्रकार से वृद्धि को प्राप्त सैन्य, दण्डशक्ति, कोश (खजाना) और राज्य (कमल-पक्ष में—जड़, नाल, कली और विस्तार) वाले राजा को छोड़ देती है। लता की भाँति यह धूर्तों (पक्षान्तर में—वृक्ष की शाखाओं) का आश्रय लेती है। गङ्गा की भाँति यह धन (पक्षान्तर में—वसु नामक आठ प्रसिद्ध देवता) की जननी होते हुए भी तरङ्ग और बुलबुले के समान (पक्षान्तर में—तरङ्ग और बुलबुले के कारण) चंचल है। सूर्य की गति के समान अनेक प्रकार के लोगों को (पक्षान्तर में—महाविषुव आदि संक्रान्तियों को) प्रकाशित करती है। पाताल की गुफा के समान अत्यंत तमोगुणजनित अज्ञान (पक्षान्तर में—अँधेरे) से युक्त है। हिडिम्बा (नामक राक्षसी) की भाँति एकमात्र भयंकर साहस (पक्षान्तर में भीमसेन के साहस) से हरण करने योग्य हृदय वाली है। वर्षा ऋतु के समान क्षणिक प्रकाश (पक्षान्तर में बिजली) उत्पन्न करने वाली है।

टिप्पणी—**समुपचितमूलदण्डकोषमण्डलम्**—मूलं च दण्डश्च कोषश्च मण्डलं च (द्व० स०)। समुपचितानि मूलदण्डकोषमण्डलानि यस्य सः (ब० स०) तम्। यह 'भूभुजम्' का विशेषण है। भुवं भुनक्ति इति भू√भुज्+क्विप्=भूभुज्। 'अप्रत्ययबहुला......' इस वाक्य में विभावना और विशेषोक्ति का सन्देहसंकर है। साथ ही पूर्णोपमा भी है। परिणामतः इनका अङ्गाङ्गिभाव से संकर है। **विटपकान्**—वेश्याओं के व्यापार करने वालों का। विट=भाण्डादयः तान् पान्तीति विटपाः, विट√पा+विच्। विटपा एव विटपकाः, विटप+क स्वार्थे। तान्। 'विटपः पल्लवे षिङ्गे विस्तारे स्तम्बशाखयोः' इति विश्वः। **अचिरद्युतिकारिणी**—अचिरा द्युतिः (कर्म० स०) अचिरद्युतिं कर्तुं शीलमस्याः इति अचिरद्युति√कृ+णिनि—ङीप्।

दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया स्वल्पसत्त्वमुन्मत्ती-करोति, सरस्वतीपरिगृहीतमीर्ष्ययेव नालिङ्गति जनम्, गुण-

वन्तमपवित्रमिव न स्पृशति, उदारसत्वममङ्गलमिव न बहु मन्यते, सुजनमनिमित्तमिव न पश्यति, अभिजातमहिमिव लंघयति, शूरं कण्टकमिव[1] परिहरति, दातारं दुःस्वप्नमिव[2] न स्मरति, विनीतं पातकिनमिव नोपसर्पति,[3] मनस्विन-मुन्मत्तमिवोपहसति[4] ।

संस्कृत टीका—दुष्टपिशाचीव—दुष्टा क्रूरा या पिशाची राक्षसी सेव, दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया—दर्शितः प्रकटीकृतः अनेकपुरुषाणाम् बहुमनुष्याणाम् उच्छ्रायः अभ्युदयः यया सा तथाविधा, स्वल्पसत्त्वम्—अल्पसाहसं, (जनम्) उन्मत्तीकरोति—उन्मत्ततां नयति पक्षे—दर्शितः अनेकपुरुषाणाम् उच्छ्रायः उच्चता यया सा नितान्तदीर्घेत्यर्थः, स्वल्पसत्त्वम् उन्मत्तीकरोति त्रासेनेति भावः। सरस्वतीपरिगृहीतम् सरस्वत्या शारदया परिगृहीतम् स्वीकृतम् विद्वांसमित्यर्थः, जनम्—पुरुषम्, इर्ष्ययेव—मत्सरेणेव, नालिङ्गति—नावलम्बते। गुणवतम्—शौर्यादिगुणोपेतम्, (जनम्) अपवित्रमिव—अपावनमिव, न स्पृशति—न स्पर्शं करोति। उदारसत्त्वम्—उच्चाशयम्, (जनम्) अमङ्गलमिव—अशुभमिव, न बहु मन्यते—न अधिकम् आद्रियते। सुजनम्—सत्पुरुषम्, अनिमित्तमिव—अपशकुनमिव, न पश्यति नावलोकयति। अभिजातम्—कुलीनम्, अहिमिव—सर्पमिव, लङ्घयति—उत्क्रमयति। शूरम्—वीरम्, कण्टकमिव, परिहरित—परित्यजति। दातारम्—बहुप्रदम्, दुःस्वप्नमिव—अशुभस्वप्नमिव, न स्मरति—न स्मृतिविषयीकरोति। विनीतम्—विनम्रम्, पातकिनमिव—पापिनमिव, नोपसर्पति—न उपगच्छति, मनस्विनम्—महामनस्कम्, उन्मत्तमिव—विक्षिप्तमिव, उपहसति—उपहास्यं करोति।

हिन्दी अनुवाद—क्रूर पिशाचिनी की तरह लक्ष्मी अनेक पुरुषों की उन्नति (पक्षान्तर में—ऊंचाई) दिखाकर अल्प बुद्धि (पक्षान्तर में—अल्प-बल) वाले

---

(१) क्वचित् 'न' कारो नास्ति। (२) दुःखस्वप्नं। (३) नापसर्पति। (४) हसति।

व्यक्ति को (उन्नति की आशा में, पक्षान्तर में—त्रास से) उन्मत्त बना देती है। विद्वान् पुरुष को मानो ईर्ष्या से आलिंगन नहीं करती है। अमंगल के समान उदारचेता को बहुत नहीं मानती है। अपशकुन या उल्कापात आदि दुर्लक्षण के समान सज्जन व्यक्ति को नहीं देखती है। साँप के समान कुलीन का उल्लंघन करती है। काँटे के समान वीर को छोड़ देती है। दुःस्वप्न के समान दानी का स्मरण नहीं करती है। पातकों के समान विनीत के पास नहीं जाती है। उन्मत्त के समान मनस्वी का उपहास करती है।

टिप्पणी—'लतेव......' से लेकर 'दुष्टपिशाचीव......' तक पूर्णोपमा अलंकार है। दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया—अनेक पुरुषों की उन्नति या ऊँचाई दिखाने वाली। यहाँ भाव यह है कि जिस प्रकार पिशाची अपना अतिशय लंबायमान शरीर दिखाकर दुर्बल व्यक्ति को भय से पागल बना देती है उसी तरह लक्ष्मी भी अनेक पुरुषों की उन्नति दिखाकर अल्प बुद्धि वाले व्यक्ति को उन्नति के पीछे उन्मत्त कर देती है। उन्मत्तीकरोति—अनुन्मत्तम् उन्मत्तम् करोति इति उन्मत्त+च्वि, इत्व, दीर्घ √कृ+लट्—ति। 'सरस्वती......' इस वाक्य में कार्य द्वारा लक्ष्मी में सपत्नी का व्यवहार समारोपित करने के कारण समासोक्ति अलंकार है जो गुणोत्प्रेक्षा से संकीर्ण है। 'गुणवंतम्.........' से लेकर 'मनस्विनम्.........' तक प्रत्येक वाक्य में उपमा अलंकार है।

परस्परविरुद्धञ्चेन्द्रजालमिव दर्शयन्ती प्रकटयति जगति[1] निजं चरितम्। तथाहि सततम्[2] ऊष्माणमारोपयन्त्यपि[3] जाड्यमुपजनयति। उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति। तोयराशिसम्भवापि[4] तृष्णां संवर्धयति। ईश्वरतां दधानापि अशिवप्रकृतित्वमातनोति। बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापादयति। अमृतसहोदरापि कटु[5] विपाका।

---

(१) क्वचित् 'जगति' इति पदं न दृश्यते। (२) सन्ततम्। (३) उपजनयन्त्यपि। (४) राशिरिव। (५) कटुक......।

विग्रहवत्यपि अप्रत्यक्षदर्शना। पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया। रेणुमयीव स्वच्छमपि कलुषीकरोति।

संस्कृत टीका—च—किञ्च, इन्द्रजालं—कुहकम्, दर्शयन्ती—दृष्टिपथं कारयन्ती, इव—तद्वत्, जगति—संसारे परस्परविरुद्धम्—अन्योन्यासम्बद्धं, निजम् स्वकीयम्, चरितं—वृत्तम्, प्रकटयति—आविष्करोति। तथाहि—तदेव दर्शयति, (इयं लक्ष्मीः) ऊष्माणं—तापम्, आरोपयन्त्यपि—प्रवर्त्तयन्त्यपि—जाड्यम्—शैत्यम्, उपजनयति—करोति इति विरोधः। तत्परिहारस्तु मानं दर्पं शैत्यं जाड्यमित्यर्थात्। उन्नतिम्—उच्चताम्, आदधानापि—धारयन्त्यपि, नीचस्वभावताम्, आविष्करोति—प्रकटयति इति विरोधः। तत्परिहारस्तून्नतिमुत्कर्ष नीचस्वभावताम् अकर्तव्यकारिताम् इत्यर्थात्। तोयराशिसम्भवापि—तोयराशेः समुद्रात् सम्भवापि समुत्पन्नापि, तृष्णां—पिपासां, संवर्धयति इति विरोधः। तत्परिहारस्तु तृष्णा धनाकाङ्क्षामित्यर्थात्। ईश्वरताम्—शिवत्वं, दधानापि—धारयन्त्यपि, अशिवप्रकृतित्वम्—अनीश्वरस्वभावत्वम्, आतनोति—विस्तारयति इति विरोधः। तत्परिहारस्तु ईश्वरताम् प्रभुताम् दधानापि आपादयन्त्यपि अशिवप्रकृतित्वम् अशुभस्वभावत्वमित्यर्थात्। बलोपचयं—बलवृद्धिम्, आहरन्त्यपि—आनयन्त्यपि, लघिमानम्—भारहीनत्वम्, आपादयति—जनयति इति विरोधः। तत्परिहारस्तु बलोपचयं सैन्यवृद्धिं लघिमानं कार्पण्यमित्यर्थात्। अमृतसहोदरापि—अमृतेन सुधया सह उत्पन्नापि, कटुविपाका—कटुरसोपेतो विपाकः परिणामो यस्याः सा तथाभूतेति विरोधः। तत्परिहारस्तु कटुः दुःखदायी विपाको यस्याः सेत्यर्थात्। विग्रहवती अपि—मूर्त्तिमती अपि, अप्रत्यक्षदर्शना—अप्रत्यक्षं चक्षुषा अगम्यं दर्शनम् अवलोकनं यस्याः सा तथाभूता इति विरोधः। तत्परिहारस्तु विग्रहवती कलहवतीत्यर्थात्। पुरुषोत्तमरतापि—पुरुषोत्तमे उत्कृष्टपुरुषे रतापि आसक्तापि, खलजनप्रिया—खलजनाः दुर्जनाः प्रियाः यस्याः सा तथाभूता इति विरोधः। तत्परिहारस्तु पुरुषोत्तमे विष्णौ रतापि खलजनप्रिया बाहुल्येन दुष्टजनावलम्बनात्। रेणुमयीव—रजोनिष्पन्नेव, स्वच्छमपि—निर्मलमपि, कलुषीकरोति—मलिनीकरोति इति विरोधः। तत्परिहारस्तु स्वच्छमपि रागादिरहितमपि जनं कलुषीकरोति—रागादियुक्तं करोति इत्यर्थात्।

हिन्दी अनुवाद—और भी, यह लक्ष्मी मानो इन्द्रजाल दिखाती हुई संसार में परस्पर विरुद्ध धर्मों से युक्त अपना चरित्र प्रकट करती है। क्योंकि निरन्तर गर्मी उत्पन्न करती हुई भी शीतलता उत्पन्न करती है (अर्थात् मनुष्य में अहंकार उत्पन्न करके उसे सदसद्विवेकशून्य कर देती है)। ऊपर उठा करके भी नीचे कर देती है (अर्थात् मनुष्य को धनोन्नत कर के भी कुत्सित स्वभाव का बना देती है)। समुद्र से उत्पन्न होकर भी प्यास (अर्थात् धन की अभिलाषा) बढ़ाती है। शिवत्व को धारण करती हुई भी अशिव स्वभाव का विस्तार करती है (अर्थात् लोगों को प्रभुता-सम्पन्न कर के दूसरे को पीड़ा पहुँचाने के कारण अमंगल स्वभाव का विस्तार करती है)। बल की वृद्धि करती हुई भी हलकापन उत्पन्न करती है (अर्थात् सेना की वृद्धि करती है पर स्वभाव को कृपण बना देती है)। अमृत की सगी होने पर भी कड़वे रस वाली है (अर्थात् परिणाम में दुःखदायिनी है।) शरीरधारिणी होने पर भी आँखों से न दिखाई पड़ने वाली है (अर्थात् प्रेरक होने के कारण युद्धकारिणी होते हुए भी आँखों से दिखाई नहीं पड़ती है; क्योंकि लक्ष्मी देवता है)। उत्तम पुरुष में आसक्त होने पर भी दुष्ट जनों से प्रीति करती है (अर्थात् विष्णु में आसक्त रहती हुई भी दुर्जनों को चाहती है, क्योंकि अधिकतर दुर्जनों के पास ही लक्ष्मी रहती है)। मानो धूलिमयी होकर स्वच्छ को भी मलिन कर देती है।

टिप्पणी—'परस्पर.........' इस वाक्य में क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है। **दर्शयन्ती**—√दृश्+णिच्+शतृ—ङीप्। यह लुप्त कर्ता 'लक्ष्मी' का विशेषण है। चरितम्=चरित्र। √चर्+क्त भावे। **सततम्**=निरन्तर, लगातार। 'सततानारताश्रान्तसन्ततAविरतानिशम्' इत्यमरः। सम्√तन्+क्त। 'लुम्पेदवश्यमः कृत्ये तुम्काममनसोरपि। समो वा हिततततयोर्मांसस्य पचि युड्घञोः' इति कारिकाबलात् समो मस्य लोपः। **जाड्यम्**—जडस्य भावः जाड्यम् जड+ष्यञ्। जड=शीतल। 'सुषीमः शिशिरो जडः' इत्यमरः। जड=सदसद्विवेकशून्य, मूर्ख। 'जडोऽज्ञः' इत्यमरः। **तोयराशिसम्भवा**—तोयराशेः सम्भवति =समुत्पद्यते इति तोयराशि—सम्√भू+अप्—टाप्। अथवा तोयराशेः सम्भवः=समुत्पत्तिः यस्याः सा व्यधिकरण बहुव्रीहिः, टाप्। **दधाना**—√धा+लट्—शानच्, टाप्। **लघिमानम्**—लघोर्भावः इति लघु+इमनिच्=लघिमा।

तम् । 'ऊष्माणमारोपयन्त्यपि......' से लेकर 'पुरुषोत्तमरतापि......' तक के वाक्यों में विरोधाभास अलंकार है। 'रेणुमयी......' इस वाक्य में क्रियोत्प्रेक्षा और विरोधाभास का अंगांगिभाव से संकर है। रेणुमयी—रेणुप्रचुरा इत्यर्थः रेणु+मयट्—ङीप् ।

यथा यथा चेयं चपला दीप्यते तथा तथा दीपशिखेव कज्जल मलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति । तथाहि, इयं संवर्धन-वारिधारा तृष्णाविषवल्लीनाम्, व्याधगीतिरिन्द्रियमृगाणाम्, परामर्शधूमलेखा सच्चरितचित्राणाम्, विभ्रमशय्या मोहदीर्घ-निद्राणाम्, निवासजीर्णवलभी धनमदपिशाचिकानाम्, तिमिरोद्गतिः शास्त्रदृष्टीनाम् पुरः पताका[1] सर्वाविनया-नाम्, उत्पत्तिनिम्नगा क्रोधावेगग्राहाणाम्, आपानभूमिः[2] विषयमधूनाम्, सङ्गीतशाला भ्रूविकारनाट्यानाम्, आवास-दरी दोषाशीविषाणाम्, उत्सारणवेत्रलता सत्पुरुषव्यवहारा-णाम्,[3] अकालप्रावृट् गुणकलहंसकानाम्, विसर्पणभूमिर्लोका-पवादविस्फोटकानाम्,[4] प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका कामकरिणः, वध्यशाला साधुभावस्य, राहुजिह्वा धर्मेन्दु-मण्डलस्य ।

संस्कृत टीका—च—किञ्च, यथा यथा—येन येन प्रकारेण, इयं—लक्ष्मीः, चपला—चञ्चला, दीप्यते—प्रकाशते, तथा तथा—तेन तेन प्रकारेण, दीप-शिखेव—प्रदीपज्वालेव, कज्जलमलिनमेव—कज्जलवत् कश्मलमेव, कर्म, केवलम्, उद्वमति—उद्गिरति । पक्षे—कज्जलमेव मलिनं कर्मेति बोध्यम् ।

---

(१) पुरःसरपताका । (२) आवास-भूमिः । (३) ......व्याहाराणाम् । (४) विस्फोटानाम् ।

तथाहि—तदेव दर्शयति, इयं—लक्ष्मीः, तृष्णाविषवल्लीनाम्—तृष्णा लोभः तल्लक्षणानां विषवल्लीनां विषलतानां, संवर्धनवारिधारा—संवर्धने वृद्धिकरणे वारिधारा जलधारा निरंतरजलसेक इति यावत्, इन्द्रिय मृगाणाम्—इंद्रियाणि एव मृगाः हरिणाः तेषाम्, व्याधगीतिः—व्याधस्य गानम्, सच्चरितचित्राणाम्—सच्चरितानि सदाचरणानि एव चित्राणि आलेख्यानि तेषां, परामर्शधूमलेखा—परामर्शाय प्रोञ्छनाय धूमलेखा धूमपंक्तिः, मोहदीर्घनिद्राणाम्—मोहाः कर्तव्याकर्तव्यविवेकाभावा एक दीर्घनिद्राः दीर्घस्वापाः तासाम्, विभ्रमशय्या—विलासशय्या, धनमदपिशाचिकानाम्—धनमदाः द्रव्याभिमानाः एव पिशाचिकाः राक्षस्यः तासाम्, निवासजीर्णवलभी—निवासार्थं जीर्णा—प्राचीना वलभी चंद्रशाला, शास्त्रदृष्टीनाम्—शास्त्राणि वेदपुराणादीनि एव दृष्टयः नेत्राणि तासाम्, तिमिरोद्गतिः—तिमिरस्य नेत्ररोगविशेषस्य उद्गतिः प्रादुर्भावः, सर्वाविनयानाम्—सर्वेषाम् सकलानाम् अविनयानाम् दुराचाराणाम्, पुरः पताका—अग्रवैजयन्ती, क्रोधावेगग्राहाणाम्—क्रोधस्य कोपस्य य आवेगाः सम्भ्रमाः त एव ग्राहाः मकराः तेषाम्, उत्पत्तिनिम्नगा—उद्भवनदी, विषयमधूनाम् विषयाः भोग्यपदार्था एव मधूनि मद्यानि तेषाम्, आपानभूमिः—पानस्थली, भ्रूविकारनाट्यानाम्—भ्रुवां विकाराः विकृतय एव नाट्यानि अभिनयाः तेषाम्, संगीतशाला—रंगशाला, दोषाशीविषाणाम्—दोषाः कामादय एव आशीविषा सर्पाः तेषाम्, आवासदरी—निवासगुहा, सत्पुरुषव्यवहाराणाम्—सत्पुरुषाः सज्जनाः तेषां व्यवहाराः आचरणानि तेषाम्, उत्सारणवेत्रलता—उत्सारणं दूरीकरणं तदर्थं वेत्रलता वेतमयष्टिः, गुणकलहंसकानाम्—गुणाः दयौदार्यादयः एव कलहंसकाः कादम्बाः तेषाम्, अकालप्रावृट्—असमयप्राप्तवर्षाकालः, लोकापवादविस्फोटकानाम्—लोकेषु ये अपवादाः विरोधोक्तयः त एव विस्फोटकाः शिलीन्ध्राणि व्रणविशेषा इति यावत् तेषां, विसर्पणभूमिः—विसर्पणाय विस्तरणाय भूमिः स्थली, कपटनाटकस्य—कपटं छलाचरणमेव नाटकम् अभिनयः तस्य प्रस्तावना आमुखम् सूत्रधारादिप्रवेशात्मकप्रारम्भ इति यावत्। कामकरिणः—कामः कन्दर्प एव करी हस्ती तस्य, कदलिका—रम्भा, साधुभावस्य—साधुतायाः वध्यशाला—हत्यागृहम्, धर्मेन्दुमण्डलस्य—धर्मः सदाचारादिकः एव इन्दुमण्डलं चन्द्रबिम्बं तस्य, राहुजिह्वा—राहोः विधुन्तुदस्य जिह्वा रसना।

हिन्दी अनुवाद—जैसे-जैसे यह चंचला लक्ष्मी प्रकाशित होती है वैसे-वैसे दीपक की लौ की तरह केवल कज्जल के समान मलिन कर्म (दीपक के पक्ष में—कज्जल रूप मलिन क्रिया) को ही प्रकट करती है। क्योंकि यह तृष्णारूपी विषलता का संवर्धन करने वाली जलधारा है। (अर्थात् जैसे जलधारा विषलता की वृद्धि करती है वैसे ही यह लक्ष्मी मृग-तृष्णा की वृद्धि करती है) इन्द्रिय रूपी हरिणों के लिये बहेलियों का गीत है (अर्थात् जैसे व्याधों का गीत हरिणों का आकर्षण करता है वैसे ही यह इन्द्रिय को आकृष्ट कर लेती है)। सच्चरित्र रूपी चित्रों को मिटाने या आवृत करने वाली धूमपंक्ति है (अर्थात् जैसे धुएं से चित्र मिट जाते हैं वैसे ही यह सच्चरित्र को बिगाड़ देती है। मोह रूपी लम्बी नींद की विलास-शय्या है (अर्थात् जैसे कोमल शय्या पर नींद खब आती है। वैसे ही इस लक्ष्मी से मोह खब बढ़ता है)। धर्म के अभिमान रूपी पिशाचिकाओं के रहने के लिए वह पुरानी अटारी है। शास्त्र रूपी नेत्रों का तिमिर नामक रोग है। समस्त दुराचारों की अग्रपताका (आगे उड़ने वाली पताका) है। क्रोध के आवेग रूपी मगरों को उत्पन्न करने वाली नदी है। विषय रूपी मद्य की पान-भूमि है। (अर्थात् भोग पदार्थ रूपी मदिरा के पीने की जगह है)। भौं मटकाने रूप अभिनय की रंगशाला है। (काम आदि) दोष रूपी सर्पों के रहने की गुफा है। सज्जनों के आचरणों को दूर करने वाली वेंत की छड़ी है। (दया, दाक्षिण्य आदि) गुण रूपी कलहंसों की असामयिक वर्षा-ऋतु है (अर्थात् जैसे वर्षा ऋतु में हंस चले जाते हैं उसी तरह लक्ष्मी के आने पर सद्गुण गायब हो जाते हैं)। लोकनिन्दा रूपी विस्फोटकों का विस्तार करने वाली भूमि है (अर्थात् लक्ष्मी के रहने पर लोकापवाद बहुत अधिक फैलता है)। छल-छद्म रूपी नाटक की प्रस्तावना है। कामदेव रूपी हाथी का कदली-वन है (अर्थात् जैसे हाथी कदली-वन में स्वेच्छापूर्वक विहार करता है वैसे ही लक्ष्मी के रहने पर काम का विहार मनमाना हो जाता है)। सुजनता का वध्यशाला (हत्या-गृह) है। और धर्म रूपी चन्द्र-मण्डल के लिए राहु की जिह्वा है।

टिप्पणी—**संवर्धनवारिधारा**—पोषण के निमित्त दी जाने वाली जल की धारा। वारिणः धारा (ष० त०) संवर्धनाय वारिधारा (च० त०)। **व्याधगीतिः**—√गै+क्तिन् भावे, 'घुमास्थागापा—' इत्यादि सूत्रेण ईत्वम्=गीतिः।

व्याधस्य गीतिः (ष० त०) । **परामर्शधूमलेखा**—ढकने के लिए धुएँ की श्रेणी । परा—आ मृश्+घञ्=परामर्शः । तस्मै धूमलेखा (च० त०) । **विभ्रमशय्या**–वि √भ्रम्+घञ् विभ्रमः । शेरते अस्याम् इति शय्या, √शी+क्यप् 'संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः' इत्यनेन । विभ्रमस्य शय्या (ष० त०) । **निवासजीर्णवलभी**—रहने के लिए पुरानी अटारी । √जॄ+क्त—टाप् =जीर्णा । सा चासौ वलभी (कर्म० स०) निवासाय जीर्णवलभी (च० त०) । **शास्त्रदृष्टीनाम्**—शास्त्राणि एव दृष्टयः (मयूरव्यंसकादिस०) । तासाम् । **पुरःपताका**—आगे फहरने वाली पताका । पताका के दिखाई पड़ने से रथ के आने की संभावना की तरह लक्ष्मी के दिखाई पड़ने से असदाचारों की संभावना की जाती है । **उत्पत्तिनिम्नगा**—उत्पत्ति की नदी । 'अथ नदी सरित् । स्रोतस्वती द्वीपवती स्रवन्ती निम्नगाऽपगा' इत्यमरः । **उत्सारणवेत्रलता**—हटाने के लिए बेंत की छड़ी । उत् √सृ+णिच्+ल्युट्—अन=उत्सारणम् । तस्मै वेत्रलता (च० त०) । **प्रस्तावना**—नाटक के आरम्भ में सूत्रधार का नटी, विदूषक या पारिपार्श्विक के साथ होने वाला संलाप जिसमें प्रस्तुत का परिचय आदि रहता है । प्र √स्तु+णिच्+युच्—अन, टाप् । **वध्यशाला**—मारने योग्य प्राणियों का घर । √हन्+यत्, वधादेशश्च 'हनो वा यद्वधश्च वक्तव्यः' इति वार्तिकेन= वध्याः । तेषां शाला (ष० त०) । 'यथा यथा......' इस वाक्य में पूर्णोपमा अलंकार है । 'इयं संवर्धन.........' इस वाक्य से लेकर 'राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्डलस्य' तक के वाक्यों में प्रायेण परम्परितरूपक अलंकार है । केवल 'पुरः पताका......' इस वाक्य में और 'उत्सारण......' इस वाक्य में निरंग केवल-रूपक अलंकार है ।

न हि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया[1] न निर्भरमुपगूढः, यो वा न विप्रलब्धः । नियतमियमालेख्यगतापि चलति, पुस्तमय्यपि[2] इन्द्रजालमाचरति, उत्कीर्णापि विप्रलभते, श्रुताप्यभिसन्धत्ते, चिन्तितापि वञ्चयति ।

---

(१) क्वचित् अनयेति पदं नोपलभ्यते । (२) पुस्तकमय्यापि ।

संस्कृत टीका—हि—निश्चयेन, तं—जनं, न पश्यामि—नावलोकयामि, यो हि—जनः, अपरिचितया—परस्परपरिज्ञानरहितया, अनया—लक्ष्म्या, निर्भरम्—अतिशयम्, नोपगूढः—नालिङ्गितः धनचेष्टया तया न संश्लिष्ट इत्यर्थः, वा—अथवा, यः—जनः, न विप्रलब्धः—न विप्रतारितः। नियतं—निश्चितम्, इयम्—लक्ष्मीः, आलेख्यगतापि—चित्रलिखितापि, चलति—गृहान्तरं व्रजति, पुस्तमय्यपि—मृद्वस्त्रादिरचितपुत्तलिकारूपापि, इन्द्रजालम्—कुहकम्, आचरति—प्रदर्शयति, अकस्मात् तस्या विलुप्तत्वात् इति भावः। उत्कीर्णापि—प्रस्तरे आलिखितापि, विप्रलभते—विप्रतारणां करोति। श्रुतापि—आकर्णितापि, अभिसंधत्ते—संशयं करोति। चिन्तितापि—ध्यातापि वञ्चयति—प्रतारयति।

हिन्दी अनुवाद—निश्चय ही मैं उस व्यक्ति को नहीं देखता हूँ, जो इस अपरिचिता (लक्ष्मी) द्वारा कसकर आलिंगित न हुआ हो अथवा ठगा न गया हो। यह चित्रपट पर अंकित होने पर भी निःसंदेह चली जाती है। कपड़े आदि की बनी गुड़िया के रूप में रखने पर भी इन्द्रजाल करती है (अर्थात् गायब हो जाती है)। (पत्थर आदि में) खुदवाकर रखने पर भी धोखा दे देती है। सुन लेने पर भी छल करती है और ध्यान करने पर भी ठग लेती है।

टिप्पणी—निर्भरम्—अत्यंत। 'अतिवेलभृशात्यर्थातिमात्रोद्गाढ निर्भरम्' इत्यमरः। यह 'उपगूढः' क्रिया का विशेषण है। उपगूढः—आलिगन किया। उप √ गुह्+क्त। 'न हि तम्.........' इस वाक्य में लक्ष्मी में कार्य द्वारा कुलटा या वेश्या का आरोप किया गया है। इसलिए समासोक्ति अलंकार है। यहाँ 'नहि तं पश्यामि' इस वाक्य का पाठ आगे करना चाहिए; अन्यथा 'यत्' शब्द से युक्त दो वाक्यों का पाठ आगे होने से 'यच्चकारो ह्ययमेव मे यदरयः' इत्यादि की तरह वाक्यगत विधेयाविमर्शदोष हो जाएगा। पुस्तमयी—मिट्टी या लकड़ी आदि की बनी पुत्तलिका। 'मृदा वा दारुणा वाथ वस्त्रेणाप्यथ चर्मणा। लोहरत्नैः कृतं वापि पुस्तमित्यभिधीयते ॥' इति भरतः। उत्कीर्णा—खुदी हुई। उत्√कृ=क्त, टाप्, नत्व इत्व। श्रुता—सुनी हुई। √श्रु+क्त—टाप्। अथवा श्रुतम्—शास्त्रम् अस्ति अस्याः इति श्रुत+अच्—टाप्। अर्थात् शास्त्रज्ञान से युक्त। चिन्तिता—स्मरण की हुई। √चिन्त्+क्त—टाप्।

एवंविधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता:[1] विक्लवा भवन्ति[2] राजानः, सर्वाविनयाधिष्ठानताञ्च गच्छन्ति । तथाहि, अभिषेकसमय एव चैषां[3] मङ्गलकलसजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम्, अग्निकार्यधूमेनेव मलिनीक्रियते[4] हृदयम् पुरोहितकुशाग्रसम्मार्जनीभिरिवापनीयते[5] क्षान्तिः, उष्णीषपट्ट[6]-बन्धेनेवावच्छाद्यते[7] जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापवार्यते[8] परलोकदर्शनम् चामरपवनैरिवापह्रियते सत्यवादिता, वेत्रदण्डैरिवोत्सार्यन्ते गुणाः, जयशब्दकलकलैरिव[9] तिरस्क्रियन्ते साधुवादाः, ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यशः ।

संस्कृत टीका—एवंविधयापि—पूर्वोक्तलक्षणयुक्तयापि, दुराचारया—दुष्टाचरणया, अनया—लक्ष्म्या, कथमपि—केनापि प्रकारेण, दैववशेन—भाग्यवशेन, परिगृहीताः—स्वीकृताः, राजानः—भूपतयः, विक्लवाः—समाकुलाः, भवन्ति—जायन्ते, सर्वाविनयाधिष्ठानताञ्च—सर्वेषां सकलानम् अविनयानां दुराचाराणाम् अधिष्ठानताम् अधिकरणतां च, गच्छन्ति—प्राप्नुवन्ति । तथाहि—तदेव दर्शयति, अभिषेककसमय एव—राज्याभिषेककाल एव, एषां—राज्ञां, मङ्गलकलशजलैः—कल्याणघटपानीयैः, दाक्षिण्यम्—औदार्यम्, प्रक्षाल्यत इव—धाव्यत इव । अग्निकार्यधूमेन—अग्निकार्यं होमादि तस्य धूमेन, हृदयं—चित्तं, मलिनीक्रियत इव—कश्मलतां नीयत इव। पुरोहितकुशाग्रसम्मार्जनीभिरिव—पुरोहितः पुरोधाः तस्य कुशाग्राणि दर्भाग्राणि एव सम्मार्जन्यः ताभिः, क्षान्तिः—क्षमा, अपह्रियत इव—अपसार्यत इव। उष्णीषपट्टबन्धेन—उष्णीषः शिरोवेष्टनम् स एव

(१) दैवपरिगृहीताः। (२) विक्लवोभवन्ति। (३) एवंषाम् एव चैतेषाम् । (४) मलिनीभवति । ५......अपह्रियते । (६)...पट...... । (७) अवाच्छाद्यते । (८) अपसार्यंते, अपर्थायते । (९) कलकलरवैः ।

पट्टबन्धः क्षौमवस्त्रबन्धनं तेन, जरागमनस्मरणं—जरायाः वृद्धावस्थायाः आयमनम् आगमः तस्य स्मरण स्मृतिः, अवच्छाद्यत इव आव्रियत इव। आतपत्रमण्डलेन—आतपत्रमण्डलं मण्डलीकृतच्छत्रं तेन, परलोक दर्शनं—जन्मान्तरावलोकनम्, अपवार्यत इव—निवार्यत इव। चामरपवनैः—चमरं बालव्यजनं तस्य पवनैः वायुभिः, सत्यवादिता—सत्यवक्तृता, अपह्रियत इव—अपनीयत इव। वेत्रदण्डैः—वेतसयष्टिभिः, गुणाः—दया दाक्षिण्यादयः, उत्सार्यन्त इव—दूरीक्रियन्त इव। जयशब्दकलकलैः—जयशब्दस्य कोलाहलैः साधुवादाः—सुवचनानि वा धन्यवादाः, तिरस्क्रियन्त इव—न्यक्क्रियन्त इव। ध्वजपटपल्लवैः—ध्वजाः पताकाः तेषां पटानि वस्त्राणि तेषां पल्लवैः प्रान्तैः, यशः—कीर्तिः, परामृश्यत इव—प्रोञ्छ्यत इव।

हिन्दी अनुवाद—इस प्रकार की दुराचारिणी लक्ष्मी से भाग्यवश किसी तरह अपनाये हुए राजा लोग व्याकुल रहते हैं और समस्त दुराचारों के आधार बन जाते हैं। क्योंकि राज्यभिषेक के समय ही इन (राजाओं) की उदारता मानो मांगलिक कलशों के जल से धो दी जाती है। हृदय मानो हवन के धुएँ से मलिन कर दिया जाता है। क्षमा मानो पुरोहित के कुशाग्र रूपी झाड ुओं से बुहार दी जाती है। बुढ़ापे के आने का स्मरण मानो रेशमी कपड़े की पगड़ी के बांधने से ढक दिया जाता है। जन्मान्तर के प्रति दृष्टिपात मानो छत्र-मंडल (तने हुए छाते) से रोक दिया जाता है। सत्य बोलना मानो चँवर की हवा से उड़ा दिया जाता है। गुण मानो बेंत की छड़ी से भगा दिये जाते हैं। साधुवाद (शाबाशी देना) मानो जय-ध्वनि के कोलाहल से दबा दिया जाता है। यश मानो पताका के वस्त्र के छोरों से पोंछ दिया जाता है।

टिप्पणी—'एवंविधया.........' इस वाक्य से लेकर 'ध्वजपटपल्लवैः.......' तक के वाक्यों में क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है। केवल 'पुरोहित.........' इस वाक्य में निरंगकेवलरूपकसंकीर्ण क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है। एवंविधया—इस प्रकार की। एवं विधः प्रकारः यस्याः सा (ब० स०) तया। **दुराचारया**—दूषित आचार वाली। दुष्टः आचारः यस्याः सा (ब० स०) तया। **विक्लवाः**—बेचैन। वि√क्लु+अच्। **सर्वाविनयाधिष्ठानताम्**—सभी अनाचारों का आश्रय। सर्वे अविनयाः (कर्म० स०) तेषाम् अधिष्ठानम् (ष० त०)। तस्य

भाव: इति सर्वाविनयाधिष्ठान+तल्—टाप् स्त्रियाम्। ताम्। **अभिषेकसमये**—राज्यारोहण या राज-तिलक के समय, जब कि वेद-मंत्र से पवित्र तीर्थों के जल और ओषधियों से अभिषेक कराया जाता है। अभि√सिच्+घञ्=अभिषेक:। तस्य समय:। तस्मिन्। **दाक्षिण्यम्**—अनुकूलता या उदारता। दक्षिणस्य भाव: इति दक्षिण+ष्यञ्। **मलिनीक्रियते**—मलिन या धूमिल कर दिया जाता है। न मलिन: अमलिन:, अमलिन: मलिन: क्रियते इति मलिन+च्वि√कृ+लट् कर्मणि =मलिनी क्रियते। क्षान्ति:—क्षमा। √क्षम्+क्तिन् भावे। **पुरोहितकुशाग्र-सम्मार्जनीभि:**—पुरोहितों के कुशों के अग्रभाग रूपी झाड़ुओं से। पुरोहितानां कुशाग्राणि (ष०त०) तान्येव सम्मार्जन्य: (मयूरव्यंसकादित्वात् समास) ताभि:। **उष्णीषपट्टबन्धेन**—पगड़ी के रेशमी वस्त्र के बंधन से। उष्णीषस्य पट्टम् (ष० त०) तस्य बन्ध: (ष० त०) तेन। **आतपत्रमण्डलेन**—छाते के घेरे से। आतपात् त्रायते इति आतपत्रम्, आतप √ त्रा+क। तस्य मण्डलम् (ष० त०) तेन। **सत्यवादिता**—सत्य भाषण। सत्यं वदितुं शीलमस्य इति सत्यवादी, सत्य √ वद्+णिनि। तस्य भाव: इति सत्यवादिता, सत्यवादिन्+तल्—टाप्।

केचित्[1] श्रम-वश-शिथिल[2]-शकुनि-गल-पुट[3]-चपलाभि: खद्योतोन्मेष-मुहूर्त्त-मनोहराभिर्मनस्विजनगर्हिताभि: सम्पद्भि: प्रलोभ्यमाना:, धन-लव-लाभावलेप-विस्मृत-जन्मानोऽनेक-दोषोपचितेन दुष्टासृजेव[4] रागावेशेन बाध्यमाना:, विविध-विषय-ग्रास[5] लालसै: पञ्चभिरप्यनेक-सहस्रसंख्यैरिवेन्द्रियै-रायास्यमाना:, प्रकृतिचञ्चलतया लब्धप्रसरेण[6] एकेनापि सहस्रतामिवोपगतेन मनसा आकुलीक्रियमाणा विह्वलता-मुपयान्ति।

संस्कृत टीका—केचित्—नृपतय:, श्रमवशशिथिलशकुनिगल-पुटचपलाभि:—श्रमवशेन प्रयासाधिक्येन शिथिलं श्लथं यत् शकुने: मयूरादिपक्षिण:

(१) क्वचित्। (२) श्रमशिथिल। (३) पक्षपुट। (४) दोषासृजेव। (५) विषय-रसग्रास.........। (६) प्रसारेण।

गलपुटं कण्ठदेशः तद्वत् चपलाभिः चञ्चलाभिः खद्योतोन्मेष-मुहूर्तमनोहराभिः—खद्योतः ज्योतिरिङ्गणः तस्य उन्मेषवत् प्रकाशवत् मुहूर्तं क्षणं मनोहराभिः चित्तहारिणीभिः, मनस्विजनगर्हिताभिः—मनस्विजनैः धीमद्भिः गर्हिताभिः निन्दिताभिः, सम्पद्भिः—समृद्धिभिः, प्रलोभ्यमानाः—लोभं नीयमानाः, धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानः—धनस्य द्रव्यस्य यो लवो लेशः तस्य लाभः प्राप्तिः तस्मात् यः अवलेपः अहंकारः तेन विस्मृतं विस्मरणं प्राप्तं जन्म येषां ते तथाविधाः, अनेकदोषोपचितेन—अनेकैः नानाविधैः दोषैः दूषणैः उपचितेन व्याप्तेन, दुष्टासृजा इव—दुष्टेन दूषितेन असृजा रक्तेन इव, रागावेशेन—विषयासक्ति-रूपाभिनिवेशेन, बाध्यमानाः—पीड्यमानाः, विविधविषयग्रास-लालसैः—विविधा अनेके ये विषयाः गोचराः त एव ग्रासाः कवलाः तत्र लालसैः, लोलुपैः, पञ्चभिः अपि—पञ्चसंख्यकैः अपि, अनेकसहस्रसंख्यैः इव, इन्द्रियैः—करणैः आयास्यमानाः—परिक्लिश्यमानाः, प्रकृतिचञ्चलतया—प्रकृत्या स्वभावेन चञ्चलतया चपलतया, लब्धप्रसरेण—प्राप्तावकाशेन एकेनापि, सहस्रताम्—सहस्रसंख्यकत्वम्, उपगतेन—प्राप्तेन इव, मनसा—चित्तेन, आकुलीक्रियमाणाः—व्यग्रीक्रियाणाः, विह्वलताम्—अस्थिरताम्, उपयान्ति—गच्छन्ति ।

हिन्दी अनुवाद—परिश्रम के कारण शिथिल पक्षी के गर्दन-भाग की तरह चंचल, जुगनू के प्रकाश के समान क्षणिक मनोहर और ज्ञानियों द्वारा निन्दित संपत्तियों से लुभाये जाते हुए, सामान्य धन-प्राप्ति के अभिमान से (अपने) जन्म (के वृत्तान्त) को भूले हुए, अनेक दोषों (काम, क्रोध आदि; रक्त-पक्ष में—वात, पित्त, कफ) से प्रवृद्ध दूषित रक्त के समान राग (विषयासक्ति) के आवेश से पीड़ित किये जाते हुए, (शब्द, स्पर्श आदि) अनेक विषयों के उपभोग की लालसा रखने वाली और पाँच होते हुए भी मानों हजारों संख्या वाली (जिह्वा, नेत्र आदि) इन्द्रियों से सताये जाते हुए और स्वभावतः चंचल होने के कारण अवकाश मिलने से एक होते हुए भी मानो हजार बने हुए मन से व्याकुल किये जाते हुए राजा लोग उद्विग्नता को प्राप्त करते हैं ।

टिप्पणी—श्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटचपलाभिः—श्रम के कारण ढीले पड़े हुए कंठभाग वाले पक्षी की तरह चंचल । श्रमस्य वशः (ष० त०) तेन शिथिलम् (सुप्सुपा स०) गलस्य पुटम् (ष० त०) शकुनेः गलपुटम् (ष० त०)

अमवशशिथिलम् शकुनिगलपुटम् (कर्म० स०) तदिव चपलाः (उपमित स०) ताभिः । खद्योतोन्मेषमुहूर्त्तमनोहराभिः—जुगनु की चमक की भाँति क्षण भर के लिए मनोहर । मुहूर्त्तं मनोहराः मुहूर्त्तमनोहराः 'अत्यन्तसंयोगे च, इति सूत्रेण (द्वि० त०) खद्योतस्य उन्मेषः (ष० त०) स इव मुहूर्त्तमनोहराः (उपमित स०) । प्रलोभ्यमानाः—लुभाये जाते हुए । प्र√लुभ्+णिच्+लट् कर्मणि+शानच् । धनलवलाभावलेपविस्मृतजन्मानः—किंचिन्मात्र धनलाभ के गर्व से जन्म को भूले हुए अर्थात् 'हम कौन हैं, कैसे थे और कैसे हो गये' इस बात को भूले हुए । यह दत्तक पुत्र के सम्बन्ध में कहा गया है । धनस्य लवः (ष० त०) तस्य लाभः (ष० त०) तस्य अवलेपः (ष० त०) तेन विस्मृतानि जन्मानि यैः ते (व्यधिकरण ब० स०) । बाध्यमानाः—पीड़ित किये जाते हुए । √बाध्+लट् कर्मणि+शानच् । विविधविषयग्रासलालसैः—अनेक विषयों के ग्रहण करने की लालसा रखने वाले । विविधाः विषयाः (कर्म० स०) तेषां ग्रासाः (ष० त०) तेषु लालसाः (स० त०) तैः । अनेकसहस्रसंख्यैः—हजारों की तादाद में । अनेकानि सहस्राणि (कर्म० स०) अनेकसहस्राणि सख्याः येषाम् तानि (ब० स०) तैः । आयास्यमानाः—कष्ट पाते हुए । आ√यस् +णिच्+लट् कर्मणि+शानच् । आकुलीक्रियमाणाः—व्याकुल किये जाते हुए । आकुल+च्वि, इत्व, दीर्घ √कृ+लट् कर्मणि+शानच् । 'केचित्......' इस वाक्य में दो लुप्तोपमाओं और पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकार की परस्पर निरपेक्ष भाव से संसृष्टि है । 'धनलव......' इस वाक्य में पूर्णोपमा अलंकार है 'विविधविषय......' इस वाक्य में गुणोत्प्रेक्षा अलंकार है । 'प्रकृति......' इस वाक्य में क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है ।

ग्रहैरिव गृह्यन्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते, मन्त्रैरिवावेश्यन्ते, सत्त्वैरिवावष्टभ्यन्ते, वायुनेव विडम्ब्यन्ते, पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते, मदनशरैर्मर्माहता इव[1] मुखभङ्गसहस्राणि कुर्वते, धनोष्मणा पच्यमाना इव विचेष्टन्ते, गाढप्रहाराहता इव[2] अङ्गानि न

---

(१) ......अभिहता इव । (२) अभिहता इव ।

धारयन्ति, कुलीरा इव तिर्यक् परिभ्रमन्ति, अधर्मभग्नगतयः पङ्गव इव परेण सञ्चार्यन्ते, मृषावाद-विष-विपाक[1]-सञ्जात मुखरोगा इवातिकृच्छ्रेण जल्पन्ति सप्तच्छद-तरव इव कुसुमरजोविकारैरासन्नवर्त्तिनां[2] शिरः शूलमुत्पादयन्ति, आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनम्[3] अपि नाभिजानन्ति, उत्कुपितलोचना[4] इव तेजस्विनो नेक्षन्ते, कालदष्टा इव महामन्त्रैरपि न प्रतिबुध्यन्ते, जातुषाभरणानीव[5] सोष्माणं न सहन्ते, दुष्टवारणा इव महामानस्तम्भनिश्चलीकृताः[6] न गृह्णन्त्युपदेशम्, तृष्णाविषमूर्च्छिताः[7] कनकमयमिव सर्वं पश्यन्ति, इषव इव[8] पानवर्द्धिततैक्ष्ण्याः[9] परप्रेरिता विनाशयन्ति, दूरस्थितान्यपि फलानीव दण्डविक्षेपैर्महाकुलानि शातयन्ति, अकालकुसुमप्रसवा इव मनोहराकृतयोऽपि लोकविनाशहेतवः, श्मशानाग्नय इवातिरौद्रभूतयः, तैमिरिका इवादूरदर्शिनः, उपसृष्टा इव क्षुद्राधिष्ठितभवनाः, श्रूयमाणा अपि प्रेतपटहा इवोद्वेजयन्ति, चिन्त्यमाना अपि महापातकाध्यवसाया इवोपद्रवमुपजनयन्ति अनुदिवसमापूर्यमाणाः पापेनेवाध्मातमूर्त्तयो भवन्ति, तदवस्थाश्च व्यसनशतशरव्यतामुपगताः,[10] वल्मीक तृणाग्रावस्थिताः[11] जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति।

---

(१) मृषावादविपाक...। (२) पार्श्ववर्त्तिना। (३) पुरःस्थितं बन्धुजनम्। (४) उत्कम्पित......। (५) जातुषा इव। (६) महामान...कृता अपि न। (७) अतितृष्णाविषवेगमूर्च्छिता। (८) असयः, अग्नयः, असवः। (९) ......पारुष्याः। (१०)......संस्थतां......। (११)......स्थिताः।

संस्कृत टीका—ग्रहैः—राह्वादिभिः, गृह्यन्ते इव—ध्रियन्ते इव, भूतैः देवयोनिविशेषैः, अभिभूयन्त इव—आक्रम्यन्त इव, मन्त्रैः—अभिचारमन्त्रैः आवेश्यन्त इव—आवेशं नीयन्त इव, सत्त्वैः—हिंस्रजन्तुभिः, अवष्टभ्यन्त इव—हठेन गृह्यन्त इव, वायुना—पवनेन, विडम्ब्यन्त इव—इतस्ततो विक्षिप्यन्त इव, पिशाचैः—राक्षसैः, ग्रस्यंत इव—कवलीक्रियंत इव, मदनशरैः—कदार्पबाणैः मर्माहताः—मर्मस्थले ताडिताः, इव—तद्वत्, मुखभङ्गसहस्राणि—आननविकृतिसहस्राणि, कुर्वंते—विदधते, धनोष्मणा—धनस्य द्रव्यस्य ऊष्मणा तापेन, पच्यमाना इव—पाकविषयीक्रियमाणा इव, विचेष्टंते—विविधां चेष्टां कुर्वन्ति, गाढप्रहाराहता इव—गाढप्रहारेण तीव्राघातेन आहूता इव, अङ्गानि—अवयवान्, न धारयंति—स्वयं न वहन्ति, कुलीरा इव—कर्कटका इव, तिर्यक्—कुटिलं, परिभ्रन्ति—परिभ्रमण कुर्वन्ति, अधर्मभग्नगतयः—अधर्मेण असदाचारेण भग्ना विष्टाः गतिः सत्कर्मणि वृत्तिः पक्षे गमनं येषां ते तथाभूताः, पङ्गव इव खञ्जरा इव, परेण—सचिवादिना पक्ष [बन्धुवर्गेण, संचार्यन्ते सत्कर्माणि प्रवर्त्यन्ते पक्षे करग्रहणादिना गमनं कार्यन्ते, मृषावादविषविपाकसञ्जातमुखरोगा इव—मृषावादः असत्यभाषणं तस्य विपाकः परिणामः तेन सञ्जातः समुत्पन्नः मुखरोगः आननव्याधिः येषाम् ते तादृशा इव, अतिकृच्छ्रेण—महता कष्टेन, जल्पन्ति—ब्रुवन्ति, सप्तच्छदतरव इव—सप्तपर्णवृक्षा इव, कुसुमरजोविकारैः—कुसुमानि नेत्ररोगाः तिरस्कारसूचकनयनभङ्गीविशेषा इति यावत् त एव रजोविकारः रजोगुणपरिणामाः तैः पक्षे कुसुमरजसां पुष्पपरागाणां विकारैः विकृतिभिः आसन्नवर्तिनां—समीपस्थितानां (जनानां) शिरः शूलम्—शिरोवेदनाम्, उत्पादयन्ति जनयन्ति, आसन्नमृत्यव इव—आसन्नः प्राप्तः समीपवर्तीति यावत् मृत्युः मरणं येषां ते तथाविधा इव, बन्धुजनमपि—स्वजनमपि, नाभिजानन्ति—न परिचिन्वन्ति, उत्कुपितलोचना इव—उत्कुपिते रुग्णे लोचने नेत्रे येषां ते तथोक्ता इव, तेजस्विनः—प्रतापिनः जनान् पक्षे सूर्यादिकान्, नेक्षन्ते—नावलोकयन्ति कालदष्टा इव—कालेन महाविषधरेण दष्टा विक्षता इव, महामन्त्रैरपि—षाड्गुण्यादिभिरपि पक्षे गारुडमन्त्रैरपि, न प्रतिबुध्यन्ते—न प्रबोधं प्राप्नुवंति, जातुषाभरणानि इव लाक्षानिष्पन्नभूषणानि इव, सोष्माणं तेजस्विनं

पुरुषं पक्षे अग्निम् न सहन्ते—न मृष्यन्ति, दुष्टवारणा इव—दुष्टगजा इव, महामानस्तम्भनिश्चलीकृताः—महान् अत्युत्कृष्टो यो मानः अभिमानः तल्लक्षणो यः स्तम्भः स्थूणा तेन निश्चलीकृताः स्तब्धतां प्रापिताः पक्षे महत् दीर्घं मानं प्रमाणं यस्य एवंविधो यः स्तम्भः आलानस्तम्भः तेन निश्चलीकृताः स्थिरीकृताः (सन्तः), उपदेशं शिक्षां पक्षे हस्तिपकवाक्यं, न गृह्णन्ति—न आददते अवगणयन्तीत्यर्थः, तृष्णाविषमूर्च्छिताः—तृष्णैव विषं गरलं तेन मूर्च्छिता मोहं प्राप्ताः, सर्वं—पदार्थं, कनकमयमिव—सुवर्णमयमिव, पश्यन्ति—अवलोकयन्ति, इषव इव—बाणा इव, पानवर्द्धिततैक्ष्ण्याः—पानेन मधुपानेन पक्षे निशानघर्षणेन वर्द्धितं तैक्ष्ण्यम् उग्रता येषाम् एवंविधाः, परप्रेरिताः—परेण अन्येन प्रेरिताः उत्साहं प्रापिताः पक्षे परेण धनुषा प्रेरिताः नोदिताः, विनाशयन्ति—विनाशं जनयन्ति । दण्डविक्षेपैः—सामदानदण्डभेदा इति तृतीयोपायप्रयोगैः, पक्षे यष्टिनिक्षेपैः दूरस्थितान्यपि दविष्ठदेशवर्तिन्यपि, फलानि इव—आम्रादीनि इव, महाकुलानि—उत्तमवंशान् कुलीनान् इत्यर्थः, शातयन्ति पीडयन्ति पक्षे पातयन्ति । अकालकुसुम-प्रसवा इव—अकाले असमये कुसुमप्रसवाः पुष्पोद्गमा इव, मनोहराकृतयोऽपि मनोहराः मनोज्ञाः आकृतयः आकाराः येषाम् एवंविधा अपि, लोकविनाशहेतवः—लोकक्षयकारणानि पक्षे लोकविनाशसूचककारणानि (भवन्ति), श्मशानाग्नय इव—श्मशानं प्रेतवनं तस्य अग्नयो वह्नय इव, अतिरौद्रभूतयः—अतिरौद्रा अतिभयंकरा भूतिः सम्पत् पक्षे भस्म येषां ते तादृशाः, तैमिरिका इव—तिमिरं नेत्ररोगः सः संजातो येषां त इव, अदूरदर्शिनः—दूरं परलोकं भाविनं दोषं वा न पश्यन्ति पक्षे दूरस्थितं वस्तु न विलोकयन्ति, उपसृष्टा इव वेश्या इव, क्षुद्राधिष्ठितभवनाः—क्षुद्रैः नीचपुरुषैः अधिष्ठितम् आश्रितं भवनं गृहं येषां ते तादृशाः पक्षे क्षुद्रैः विटैः अधिष्ठितं भवनं यासां ताः तादृश्यः, श्रूयमाणा अपि—आकर्ण्यमाना अपि, प्रेतपटहा इव—मृतकसमीपे वाद्यमाना आनका इव उद्वेजयन्ति—विक्षोभयन्ति, चिन्त्यमाना अपि—चेतसि स्मर्यमाणा अपि, महापातकाध्यवसाया इव—महापातकानां ब्रह्महत्यादीनाम् अध्यवसाया उद्योगा इव, उपद्रवम्—अशान्तिम्, उपजनयन्ति—निष्पादयन्ति. अनुदिवसम्—प्रतिदिवसम्, पापेन—पातकेन, आपूर्यमाणा इव—भ्रियमाणा

इव, आध्मातमूर्तयः—स्थूलदेहाः, भवन्ति—जायन्ते, च—पुनः, तद-वस्थाः—ताः पूर्वोक्ताः अवस्था येषां ते तादृशाः, व्यसनशतशरव्यताम्—व्यसनानां द्यूतादीनां शतं तस्य शरव्यं लक्ष्यं तस्य भावः तत्त्वम् आश्रयत्वम्, उपगताः प्राप्ताः (सन्तः), वल्मीकतृणाग्रावस्थिताः—वल्मीकं वामलूरः कीट-विशेषेण निस्सारितमृत्तिकाराशिः इत्यर्थः तत्र उत्पन्नानि तृणानि नडादीनि तेषाम् अग्राणि प्रान्तानि तेषु अवस्थिताः विद्यमानाः, जलबिन्दव इव जल-कणा इव, पतितम् अपि—स्वधर्मात् च्युतम् अपि पक्षे पृथिव्यां परिभ्रष्टम् अपि, आत्मनं—स्वं, नावगच्छन्ति—न जानन्ति ।

हिन्दी अनुवाद—(ऐसे राजा लोग) ग्रहों से मानो पकड़ लिये जाते हैं, भूतों से मानो दबोच दिये जाते हैं, मन्त्रो से मानों वश में कर लिये जाते हैं अथवा भूतादि के द्वारा आविष्ट कर दिये जाते हैं, हिंसक प्राणियों से मानो हठात् पकड़ लिये जाते हैं, वायु से मानो विक्षिप्त कर दिये जाते हैं, पिशाचों से मानो ग्रस लिये जाते हैं, कामदेव के बाणों से मर्माहत होकर मानो हजारों प्रकार की मुख भंगिमाएं करते हैं (अर्थात् मुंह बनाते हैं), धन की गर्मी से पकते हुए-से अनेक चेष्टाएं करते हैं । कठोर प्रहार से आहत हुए की तरह अंगों का वहन (स्वयं) नहीं कर पाते हैं, केकड़े की तरह टेढ़ा-मेढ़ा चलते हैं, पाप के कारण चलने में असमर्थ पंगु के समान दूसरे के द्वारा चलाये जाते हैं, (अर्थात् मंत्री आदि के द्वारा कर्तव्यपथ पर अग्रसर किये जाते हैं), मिथ्या भाषण रूप विष के परिणाम से उत्पन्न मुख-रोग वालों की तरह अत्यंत कष्ट से बोलते हैं, छतिवन के पेड़ की तरह अवहेलनासूचक नेत्र-भंगिमा रूप रजोगुण के परिणाम से (वृक्षपक्ष में पुष्प-पराग से) निकटवर्ती लोगों के शिर में वेदना (दर्द) उत्पन्न करते हैं, मरणासन्न (व्यक्तियों) की तरह स्वजनों को भी नहीं पहचानते हैं, नेत्ररोगियों के समान तेजस्वियों को नहीं देखते (अर्थात् जैसे नेत्र के रोगी सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थों को नहीं देखते वैसे राजा तेजस्वी व्यक्तियों को ईर्ष्यावश नहीं देखते), महाविषधर से डसे हुओं की भांति महामन्त्रों से भी चेतना प्राप्त नहीं करते (अर्थात् जैसे महाविषधर सर्प के काटे हुए व्यक्ति ओझाओं के बड़े-बड़े मंत्रों से होश में नहीं आते उसी प्रकार राजा लोग सचिवों की उत्कृष्ट मन्त्रणाओं से

संकेत नहीं होते) लाह के बने आभूषणों की नाईं प्रतापी (लाक्षा-आभूषण के पक्ष में अग्नि) को सहन नहीं करते, दुष्ट हाथियों के समान अत्यन्त अहंकार के द्वारा किये गये स्तम्भन से (हाथी के पक्ष में बड़े परिमाण के बन्धन-स्तम्भ से) निश्चल होकर उपदेश नहीं ग्रहण करते (हाथी के पक्ष में सीख नहीं मानते), तृष्णा रूपी विष से मोहित होकर सब को सुवर्णमय देखते हैं, शान चढ़ा कर तीक्ष्ण (राज-पक्ष में मद्य पिलाकर उग्र) किये गये तथा धनुष से छोड़ गए (राज-पक्ष में दूसरों से प्रोत्साहित किये गए) बाणों के समान (राजा लोग दूसरों का) विनाश करते हैं। दूरवर्ती (पेड़ में लगे हुए) फलों के समान उत्तम कुलों (अर्थात् कुलीनों) को दंडनीति के प्रयोग से (फल-पक्ष में डंडे आदि के फेंकने से) गिरा देते हैं, असमय में खिलने वाले फूलों के समान सुन्दर आकृति के होते हुए भी लोगों के विनाश के कारण (पुष्प-पक्ष में सूचक) होते हैं, श्मशान की अग्नि के समान अत्यंत भीषण ऐश्वर्य (अग्नि-पक्ष में भस्म) वाले होते हैं, नेत्ररोगी के समान दूर की चीजों को (राज-पक्ष में परिणामों को) नहीं देख पाते हैं, वेश्याओं (के गृहों) के समान उनके भवन नीच जनों (वेश्या-पक्ष में विटों) से अधिष्ठित (आबाद) रहते हैं, शव के आगे बजाये जाने वाले ढोल के समान सुन लिये जाने पर भी अशान्ति उत्पन्न करते हैं, प्रतिदिन मानो पाप से भरते हुए स्फीतदेह (फूले हुए शरीर वाले) हो जाते हैं और ऐसी अवस्थाओं में पड़ कर (वे राजा लोग) अनेक प्रकार के दुर्व्यसनों के लक्ष्य बनकर बल्मीक पर उगे हुए तृण के अग्रभाग पर अवस्थित जल-बिन्दु के समान पतित (राजा-पक्ष में स्वधर्मच्युत और जल-बिन्दु के पक्ष में भूमिच्युत) होने पर भी अपने को नहीं जानते हैं।

टिप्पणी—भूतैः—भूतों से। भूत, प्रेत, पिशाच आदि देवयोनियाँ हैं। 'पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः' इत्यमरः। 'ग्रहैरिव...' से लेकर 'शावप्रहाराहताः......' तक के प्रत्येक वाक्य में क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है। कुलीराः—केकड़े। 'स्यात् कुलीरः कर्कटकः' इत्यमरः। √कुल्+ईरन्, किस्त्वात् गुणनिषेध। 'कुलीराः......' इस वाक्य में पूर्णोपमा अलंकार है। 'अधर्मभग्नगतयः ......' इस वाक्य में पूर्णोपमा और पदार्थहेतुक काव्यलिंग अलंकारों का संकर है। मृषावादविषविपाकसञ्जातमुखरोगाः—मिथ्या भाषण रूप विष के परिणाम

में जिनके मुख में रोग उत्पन्न हो गया है। मृषा वादः (कर्म० स०) स एव विषम् (मयूरव्यंसकादि स०) तस्य विपाकः (ष० त०) तेन सञ्जातः मुखरोगो येषां ते (ब० स०)। इस वाक्य में निरंगकेवलरूपक अलंकार और क्रियोत्प्रेक्षा का संकर है। **कुसुमरजोविकारैः**—(राज-पक्ष में) नेत्ररोग=अवहेलना सूचक नेत्र-संकेत रूप रजोगुण के परिणामों से। 'कुसुमं स्त्रीरजोनेत्ररोगयोः फलपुष्पयोः' इत्यमरः। (वृक्ष-पक्ष में) फूलों की धूलों से। वैद्यक में प्रसिद्ध है कि छातिवन के पुष्प-पराग के अधिक स्पर्श करने से सिरदर्द होने लगता है। **आसन्नवर्तिनाम्**—निकट में रहने वालों का। आ√सद्+क्त=आसन्न √वृत्+णिनि। **अकाल-कुसुमप्रसवाः**—असामयिक पुष्पोद्गम। ये उत्पात के सूचक हैं। 'द्रुमोषधिविशेषाणामकाले कुसुमोद्गमः। फलप्रसवयोर्बन्धं महोत्पातं विदुर्बुधाः॥' **उपसृष्टा**—वेश्या। उपसृष्टं=मैथुनम् आधिक्येन अस्ति अस्याः इति उपसृष्ट+अच्—टाप्। उप√सृज्+क्त='उपसृष्टं मैथुनं स्यात्' इति त्रिकाण्डशेषः। **महापातकाध्यवसायाः**—महापातक करने के विचार। अधि—अव√सो+घञ्=अध्यवसायाः। महापातकानाम् अध्यवसायाः (ष० त०)। मनु के मत से महापातक ये हैं—'ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः। महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह॥' सप्तच्छदतरव इव......' इस वाक्य से लेकर 'चिन्त्यमाना अपि...' तक के वाक्यों में सर्वत्र पूर्णोपमा अलंकार है। केवल 'तृष्णाविषमूर्च्छिताः ......'इस वाक्य में निरंगकेवलरूपक और गुणोत्प्रेक्षा का अंगांगिभाव से संकर अलंकार है। 'अनुदिवसम्......' इस वाक्य में क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है। **व्यसनशतशरव्यताम्**—सैकड़ों व्यसनों की लक्ष्यता को। व्यसनानां शतानि (ष० त०) तेषां शरव्यताम् (ष० त०)। मनु ने व्यसनों को इस प्रकार गिनाया है—मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परीवादः स्त्रियो मदः। तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥ पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम्। वाग्दण्डजञ्च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः॥' 'तदवस्थाश्च......इस वाक्य में उपमा अलंकार है।

अपरे तु स्वार्थनिष्पादनपरैर्धन-पिशित-ग्रास-गृध्रैरास्थान-नलिनीबकैः[1], द्यूतं विनोद इति, परदाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति,

(१) ......धूर्तबकैः।

मृगया[1] श्रम इति, पानं विलास इति, प्रमत्तता[2] शौर्यमिति, स्वदारपरित्यागः[3] अव्यसनितेति, गुरुवचनावधीरणमपरप्रणेयत्वमिति, अजितभृत्यता[4] सुखोपसेव्यत्वमिति, नृत्य[5]-गीत-वाद्य-वेश्याभिसक्तिः[6] रसिकतेति[7], महापराधानाकर्णनं[8] महानुभावतेति, परिभवसहत्वं[9] क्षमेति, स्वच्छन्दता[10] प्रभुत्वमिति, देवावमाननं महासत्त्वतेति, वन्दिजनख्यातिः[11] यश इति, तरलता[12] उत्साह इति, अविशेषज्ञता[13] अपक्षपातित्वमिति दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयद्भिरन्तः स्वयमपि विहसद्भिः प्रतारणकुशलैर्धूर्तैरमानुषोचिताभिः[14] स्तुतिभिः प्रतार्यमाणा वित्तमदमत्तचित्ता निश्चेतनतया[15] तथैवेत्यात्मन्यारोपितालीकाभिमानाः[16] मर्त्यधर्माणोऽपि दिव्यांशावतीर्णमिव सदैवतमिवातिमानुषम्[17] आत्मानमुत्प्रेक्षमाणाः प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति ।

संस्कृत टीका—अपरे तु—अन्ये तु (राजानः दोषानपि गुणपक्षमध्यारोपयद्भिः धूर्तैः स्तुतिभिः प्रतार्यमाणाः सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति इति अन्वयः) स्वार्थनिष्पादनपरैः—स्वस्य आत्मनः यः अर्थः प्रयोजनं तस्य निष्पादनं संसाधनं तस्मिन् परैः परायणैः, धनपिशितग्रासगृध्रैः—धनानि द्रव्याणि एव पिशितानि मांसानि तेषां ग्रासे ग्रहणे गृध्रैः एतन्नामकैः प्रसिद्धैः

---

(१) मृगयां । (२)—प्रमत्ततां (३) परित्यागं, । (४) ....भृत्यताम् । (५) नृत्त......... । (६) अभिसक्ति । (७) रसिकतामिति । (८) महापराधावकर्णनम् । (९) पराभवसहत्वं, परभवसहत्वं । (१०) स्वच्छन्दतां । (११) ख्यातिं । (१२) तरलताम् । (१३) अविशेषज्ञताम् । (१४) अमानुषलोकोचिताभिः । (१५) मत्तनिश्चयेन । (१६) तथेति, यथेति, आत्मारोपित...... । (१७) अतिमानुष्यकम् ।

पक्षिभिः इव, आस्थाननलिनीबकैः—आस्थानं नृपोपवेशनस्थलं तदेव नलिनी कमलिनी तस्यां बकैः बकपक्षिभिः इव, द्यूतं—द्यूतक्रीडा, विनोदः—मनोरञ्जनम् इति कथनेन (वस्तुतस्तु द्यूतं दुर्व्यसनत्वात् दोष एवेत्यभिप्रायः), परदाराभिगमनं—परस्त्रीसम्भोग, वैदग्ध्यम्—चातुर्यम् इति कथनेन (परमार्थतस्तु परदाराभिगमनं पातोत्पादकमायुः क्षयकरञ्चेति भावः), मृगया—आखेटकम्, श्रमः—व्यायामः इति कथनेन (वस्तुतस्तु प्राणिहिंसाकरत्वात् आखेटो महान् दोष इत्याशयः), पानं—मद्यसेवनं, विलासः—भोगविशेषः इति कथनेन (यथार्थतस्तु मद्यपानं महापातकम् इति भावः), प्रमत्तता—गर्विता, शौर्यम्—वीरता इति कथनेन (वस्तुतस्तु प्रमत्तता आत्मविनाशकारिणी एवेति भावः), स्वदारपरित्यागः—निजभार्यायाः त्यजनम्, अव्यसनिता—अनासक्तिः इति कथनेन (परमार्थतस्तु पत्नीत्यागः महापापदायक एवेति भावः), गुरुवचनावधीरणम्—गुरुवचनस्य गुरोर्वाक्यस्य अवधीरणम् अवहेलनम्, अपरप्रणेयत्वम्—अनन्यवश्यत्वम् इति कथनेन (परमार्थतस्तु गुरुवाक्यातिक्रमणम् अकल्याण-करमेवेति भावः), अजितभृत्यता—जिताः वशवर्तीकृताः भृत्याः सेवकाः येन स जितभृत्यः तदितरः अजितभृत्यः तस्य भावः तत्ता, सुखोपसेव्यत्वम् सुखेन अनायासेन उपसेवितुं योग्यः सुखोपसेव्यः तस्य भावः तत्त्वम् इति कथनेन (वस्तुतस्तु सा क्षतिकारिका एव भृत्यानां स्वेच्छाचारित्वात् इति भावः), नृत्यगीतवाद्यवेश्याभिसक्तिः—नृत्यं नर्तनं गीतं गानं वाद्यम् आतोद्यम् वेश्या गणिका तासु अभिसक्तिः आसक्तिः, रसिकता—रसज्ञता इति कथनेन (वस्तुतस्तु नृत्यादिषु आसक्तता कामज दोष एवेति भावः), महापराधानाकर्णनं—महतो विशालस्य अपराधस्य अनाकर्णनम् अश्रवणं, महानुभावता—उदारहृदयता इति कथनेन (वस्तुतस्तु इदं कर्तव्यस्खलनं दोष एव), परिभवसहत्वम्—अन्यकृततिरस्कारसहनशीलत्वम्, क्षमा—क्षान्तिः इति कथनेन (वस्तुतस्तु इदं भीरुत्वमेवेति भावः), स्वच्छन्दता—स्वैरिता, प्रभुत्वम्—ऐश्वर्यम् इति कथनेन (वस्तुतस्तु सा अनर्थोत्पादकतया महान् दोष एवेति भावः) देवावमाननं—देवानां देवतानाम् अवमाननम् अवगणनं, महासत्त्वता—महापराक्रमशालिता इति कथनेन (परमार्थतस्तु देवापमानः अमाङ्गल्यकरत्वात् दोष

एव), वन्दिजनख्यातिः—वन्दिजनाः मागधादयः तैः कृता ख्यातिः प्रशंसा, यशः—कीर्तिः इति कथनेन (यथार्थतस्तु सा वेतनदानजन्या मिथ्या स्तुतिः दोष एव), तरलता—चञ्चलता, उत्साहः इति कथनेन (वस्तुतस्तु चाञ्चल्यं पुरुषाणां दोष एव), अविशेषज्ञता—विशेषाविशेषानभिज्ञता, अपक्षपातित्वम्—पक्षपातशून्यत्वम् माध्यस्थ्यमिति यावत इति कथनेन), वस्तुतस्तु विशेषज्ञानाभावे साधुदुर्जनयोः अनभिज्ञानं दोष एवेति भावः), दोषानपि—दूषणान्यपि, गुणपक्षम्—गुणकोटिम्, अध्यारोपयद्भिः—आरोपयद्भिः, अन्तः—अन्तःकरणे, स्वयमपि—आत्मनापि, विहसद्भिः—हास्यं कुर्वद्भिः, प्रतारणकुशलैः—प्रतारणं वञ्चना तत्र कुशलैः निपुणैः, धूर्त्तैः—कपटिपुरुषैः, अमानुषोचिताभिः—अमानुषः मनुष्यभिन्नः देव इत्यर्थः तस्य उचिताभिः योग्याभिः, स्तुतिभिः—प्रशंसाभिः, प्रतार्यमाणाः—वञ्च्यमानाः, वित्तमदमत्तचित्ताः—वित्तस्य द्रव्यस्य मदः गर्वः तेन मत्तानि चित्तानि हृदयानि येषां ते तथाविधाः, निश्चेतनतया—निर्गता चेतना ज्ञानं यस्मात् तस्य भावः तत्ता तया, तथैव—'यथा इमे कथयन्ति तथैवाहम्,' इति—एवं प्रकारेण, आत्मनि—स्वस्मिन्, आरोपितालीकाभिमानाः—आरोपितः अध्यासितः अलीकाभिमानः मिथ्यागर्वः यैः ते तादृशाः, मर्त्यधर्माणोऽपि—मर्त्यस्य मनुष्यस्य धर्माः जरामरणादयः येषां ते तादृशाः सन्तोऽपि, आत्मानं—स्वं, दिव्यांशावतीर्णमिव—दिव्या देवसम्बन्धिनो ये अंशा भागाः तैः अवतीर्णमिव समुत्पन्नमिव, सदैवतमिव—देवताधिष्ठितमिव, अतिमानुषं—मानवमतिक्रान्तम् उत्प्रेक्षमाणाः—मन्यमानाः, प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः—प्रारब्धा या दिव्योचिताः स्वर्गीयजनयोग्याः चेष्टाः क्रियाः ताभिः अनुभावः माहात्म्यं येषां ते तादृशाः, सर्वजनस्य—सकललोकस्य, उपहास्यताम्—उपहासयोग्यताम्, उपयान्ति—गच्छन्ति ।

हिन्दी अनुवाद—फिर स्वार्थ-साधन करने में तत्पर, धन रूपी मांस के खाने में गीध, दरबार रूपी कमलिनी के बगले और 'जुआ खेलना मनोरंजन है, पर-स्त्री से संभोग करना चतुरता है, शिकार खेलना व्यायाम है, मद्य पीना विलास है, मतवाला होना वीरता है, अपनी पत्नी को छोड़ देना अनासक्ति है, गुरु जनों की बात काटना स्वाधीनता है, नौकरों को

वश में न रखना आसानी से सेवा करने योग्य होना है, नाचने, गाने, बजाने और वेश्या में आसक्त रहना रसिकता है, बड़े-बड़े अपराधों को न सुनना (अर्थात् उन पर ध्यान न देना) महाप्रभावशालिता है, तिरस्कार को सह लेना क्षमा है, मनमाना आचरण करना प्रभुता है, देवताओं का अपमान करना महाबलशालिता है, स्तुति-पाठकों द्वारा की गई प्रशंसा यश है, चपलता उत्साह है और विशेष न जानना निष्पक्षता है'—इस प्रकार दोषों को भी गुण की श्रेणी में आरोपित करने वाले, मन में स्वयं भी हँसने वाले तथा वंचना करने में प्रवीण धूर्तों द्वारा देवताओं के योग्य स्तुतियों से ठगे जाते हुए, धन के मद से उन्मत्त चित्त वाले, चेतनाशून्य या विवेकहीन होने के कारण अपने में उन (धूर्तों की) बातों का आरोप कर के मिथ्या गर्व करने वाले और मनुष्य होने पर भी अपने को मानो देवता के अंश से अवतीर्ण अथवा किसी देवता द्वारा अधिष्ठित अतिमानव मानते हुए दिव्य जनों के योग्य चेष्टाओं का प्रारंभ कर के माहात्म्य दिखाने वाले दूसरे (राजा) सभी लोगों के उपहासास्पद बन जाते हैं।

टिप्पणी—धनपिशितग्रासगृध्रैः—धन रूपी मांस के ग्रहण करने में गृध्र पक्षी के समान। धनम् एव पिशितम् (मयूरव्यंसकादि स०) तस्य ग्रासः (ष० त०) तस्मिन् गृध्राः (सुप्सुपा स०) तैः। यहाँ परम्परितरूपक अलंकार है। **आस्थाननलिनीबकैः**—सभा-मंडल रूप कमलिनी के बक पक्षी के समान। यहाँ तात्पर्य यह है कि जैसे बगले कमलिनी का आश्रय लेकर उसके पत्तों से अपने को आच्छादित कर के मछलियों को ठगते हुए चोंच से सहसा पकड़ लेते हैं उसी तरह धूर्त्त लोग राजा का आश्रय लेकर दूसरों को ठगते हुए उनका धन ले लेते हैं। आस्थीयते जनैः अस्मिन् इति आस्थानम्=सभा या सभा-भवन। 'समज्या परिषद्गोष्ठीसभासमितिसंसदः। आस्थानी क्लीबमास्थानं स्त्रीनपुंसकयोः सदः॥' इत्यमरः। आ√स्था+ल्युट्—अन अधिकरणे। आस्थानम् एव नलिनी (मयू० स०) तस्याः बकाः (ष० त०) तैः। यहाँ भी परम्परितरूपक अलंकार है। **मृगया**—शिकार। 'आखेटनं मृगव्यं स्यादाखेटो मृगया स्त्रियाम्' इत्यमरः। मृग्यन्ते पशवोऽस्याम् इति √मृग्+णिच्+श, यक्, णिलोप, टाप्। **अव्यसनिता**—व्यसनी न

होना । व्यसन+इनि । न व्यसनी (न० त०) अव्यसनिन्+तल्—टाप् । **अपरप्रणेयत्वम्**—दूसरे का वशीभूत न होना । 'वश्यः प्रणेयः' इति कोशः । परेण परस्य वा प्रणेयः (तृ० त० वा ष० त०) न परप्रणेयः (न० त०) अपरप्रणेय+त्व भावे । **नृत्यगीतवाद्यवेश्याभिसक्तिः**—नृत्यं च गीतं च वाद्यं च वेश्या च (द्व० स०) तासु अभिसक्तिः (स० त०) । **देवावमाननम्**—देवताओं का अपमान । 'रोढाऽवमाननाऽवज्ञाऽवहेलनमसूर्क्षणम्' इत्यमरः । **प्रतार्यमाणाः**—ठगे जाते हुए । प्र√तृ+णिच्+लट्, यक्, शानच्, मुगागम । **मर्त्यधर्माणः**—मनुष्य के धर्म—जरा, मृत्यु, व्याधि आदि हैं जिनके वे । मर्त्यस्येव धर्माः येषां ते (व्यधिकरण ब० स०) 'धर्मादनिच्केवलात्' इति सूत्रेण अनिच् । 'अवतीर्णमिव' इसमें क्रियोत्प्रेक्षा और 'सदैवतमिव' इसमें गुणोत्प्रेक्षा अलंकार हैं । **अतिमानुषम्**—सामान्य मानव से बढ़कर । मानुषम् अतिक्रान्तः अतिमानुषः (प्रा० स० 'अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया' इत्यनेन) तम् । **प्रारब्धदिव्योचितचेष्टानुभावाः**—स्वर्ग में रहने वाले व्यक्ति के योग्य चेष्टा एवं प्रभाव का आरंभ करने वाले अर्थात् संकल्पमात्र से समुद्र को लाँघ जाने आदि की चेष्टायें और शापमात्र से शत्रु को मार देने आदि का प्रभाव प्रदर्शित करने वाले । चेष्टाश्च अनुभावाश्च (द्व० स०) दिव्यानाम् उचिताः (ष० त०) प्रारब्धाः दिव्योचिताः चेष्टानुभावाः यैः ते (त्रिपद ब० स०) ।

आत्मविडम्बनाऽन्धानुजीविना जनेन क्रियमाणामभिनन्दन्ति । मनसा देवताध्यारोपणप्रतारणा[1] सम्भूत[2]-सम्भावनोपहताश्चान्तः प्रविष्टापरभुजद्वयमिवात्मबाहुयुगलं सम्भावयन्ति । त्वगन्तरिततृतीयलोचनं स्वललाटमाशङ्कन्ते । दर्शनप्रदानमपि[3] अनुग्रहं गणयन्ति । दृष्टिपातमप्युपकारपक्षे स्थापयन्ति । सम्भाषणमपि संविभागमध्ये कुर्वन्ति । आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते । स्पर्शमपि[4] पावनमाकलयन्ति ।

---

(१) विप्रतारणा । (२) ....असद्भूत; ......समुद्भूत । (३) प्रदानेऽपि । (४) संस्पर्शमपि ।

मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्[1], न मानयन्ति मान्यान्, नार्चयन्त्यर्चनीयान्, नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून्, अनर्थकायासान्तरितविषयोपभोग[2] सुखमित्युपहसन्ति विद्वज्जनम्[3], जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धजनोपदेशम्[4] आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिने।

संस्कृत टीका—च—किञ्च, अनुजीविना जनेन—सेवकजनेन, क्रियमाणां—विधीयमानाम्, आत्मविडम्बनां—स्वस्मिन्नविद्यमानगुणारोपलक्षणां वञ्चनाम्, अभिनन्दन्ति—प्रशंसन्ति। देवताध्यारोपणप्रतारणासम्भूतसम्भावनोपहताः—देवतायाः विष्ण्वादेः अध्यारोपणम् आरोपणम् तदेव प्रतारणा वञ्चना तया सम्भूता सञ्जाता या सम्भावना देवरूपत्वेन निश्चयः तया उपहता विनष्टबुद्धयः (सन्तः), मनसा—चेतसा, आत्मबाहुयुगलं—निजभुजद्वयम्, अन्तः प्रविष्टापरभुजद्वयमिव—अन्तः मध्ये प्रविष्टम् गतम् अपरम् अन्यत् भुजद्वयं बाहुयुगं यस्मिन् एवंविधमिव, सम्भावयन्ति—मन्यन्ते। स्वललाटं—स्वकीयभालं, त्वगन्तरिततृतीयलोचनं—त्वचा चर्मणा अन्तरितं पिहितं तृतीयं विषमं लोचनं नयनं यस्मिन् एतादृशम्, आशङ्कन्ते—शङ्काविषयीकुर्वते। दर्शनप्रदानमपि—(लोकानां) नेत्रगोचरीभवनमपि, अनुग्रहं—प्रसादं, गणयन्ति—मन्यन्ते। दृष्टिपातमपि—(नेत्राभ्याम्) अवलोकनमपि, उपकारपक्षे—उपकृतिकोटौ, स्थापयन्ति—निदधति। सम्भाषणमपि—आलापमपि, संविभागमध्ये—संविभागः दानम् तस्य मध्ये, कुर्वन्ति—गणयन्ति। आज्ञामपि—आदेशमपि, वरप्रदानं—अभिलषितदानं मन्यन्ते—जानन्ति। स्पर्शमपि—संश्लेषमपि, पावनम्—पवित्रताजनकम्, आकलयन्ति—विचारयन्ति। मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराः—मिथ्या वृथा माहात्म्यम् महनीयता तस्य गर्वः अभिमानः तेन निर्भराः परिपूर्णाः, देवताभ्यः—

---

(१) द्विजान्। (२) ....अन्तरितोपभोग......। (३) विद्वज्जनशीलम्। (४) न पश्यन्ति वृद्धोपदेशम्।

विष्ण्वादिभ्यः, न प्रणमन्ति—न नमस्कुर्वन्ति, द्विजातीन्—ब्राह्मणान्, न पूजयन्ति—न अर्चयन्ति, मान्यान्—माननीयान्, न मानयन्ति—न सत्कुर्वते, अर्चनीयान्—पूजनीयान्, न अर्चयन्ति—न पूजयन्ति, अभिवादनार्हान् उपसंग्रहणोचितान्, न अभिवादयन्ति—न पादग्रहणं कुर्वन्ति, गुरून्—आचार्यान्, न अभ्युत्तिष्ठन्ति—न अभ्युत्थानं कुर्वन्ति, अनर्थकायासान्तरितविषयोपभोगसुखम्—अनर्थकः निष्फलः यः आयासः श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठाने प्रयासः तेन अन्तरितं व्यवहितं दूरीकृतमित्यर्थः विषयोपभोगसुखं रमणीसम्भोगसुखं येन तं तादृशम्, इति—अस्मादेव कारणात्, विद्वज्जनं—पण्डितजनम्, उपहसन्ति—उपहासं कुर्वन्ति, जरावैक्लव्यप्रलपितम्—जरा वार्धक्यं तया यत् वैक्लव्यं विकलता तेन प्रलपितं जल्पितम्, इति कृत्वा, वृद्धजनोपदेशं—परिणतवयस्कजनशिक्षां, पश्यन्ति—अवलोकयन्ति असारं मन्यन्त इति भावः, आत्मप्रज्ञापरिभवः—आत्मनः स्वस्य या प्रज्ञा बुद्धिः तस्याः परिभवः तिरस्कारः, इति कृत्वा, सचिवोपदेशाय—सचिवस्य मन्त्रिणः उपदेशाय शिक्षायै, असूयन्ति—असूयां कुर्वन्ति, हितवादिने—कल्याणभाषिणे, कुप्यन्ति—क्रोधं कुर्वन्ति।

हिन्दी अनुवाद—आश्रित जनों द्वारा की जाने वाली अपनी विडम्बना (अर्थात् उक्त प्रकार से दोषों को गुण बताकर की जाने वाली वंचना) का भी अभिनन्दन करते हैं। देवता के आरोप रूप वंचना से उत्पन्न देवत्व के निश्चय से नष्ट बुद्धि वाले (राजा) मन से मानो अपनी दोनों बाहुओं के भीतर अन्य दो भुजाओं की संभावना करते हैं। (अर्थात् धूर्तों द्वारा प्रतारित होकर अपने को चतुर्भुज विष्णु मान बैठते हैं)। अपने ललाट में त्वचा से आवृत तीसरे नेत्र की आशंका करते हैं (अर्थात् अपने को त्रिनेत्र शिव मानते हैं)। दर्शन देना भी अनुग्रह करना समझते हैं (अर्थात् लोगों को अपना दर्शन दे देना वे उन पर बड़ा अनुग्रह करना समझते हैं) आँखों से देख भर लेने को भी उपकार की श्रेणी में रखते हैं। संलाप को भी द्रव्य-दान के बीच गणना करते हैं (अर्थात् बातचीत कर लेने भर को वे द्रव्य-दान समझते हैं। आज्ञा को भी वरदान देना मानते हैं। स्पर्श को भी पवित्र करने वाला समझते हैं। झूठी महिमा के गर्व से परिपूर्ण (वे राजा) देवताओं को प्रणाम नहीं करते, ब्राह्मणों की पूजा नहीं करते, माननीय व्यक्तियों का सम्मान नहीं करते, पूज्य लोगों की

अर्चना नहीं करते, पैर छूकर प्रणाम करने योग्य व्यक्तियों का स्पर्श नहीं करते, गुरु जनों के सामने उठकर खड़े नहीं होते, 'व्यर्थ का परिश्रम करके ये विषय-भोग के सुखों से वंचित रहते हैं' —ऐसा कहकर विद्वानों का उपहास करते, बुढ़ापे की बेचैनी का यह प्रलाप है—ऐसा सोचकर वृद्धों के उपदेश को सारहीन समझते, अपनी बुद्धि का अनादर समझकर मंत्रियों की सलाह से द्वेष करते और हित की बात कहने वाले के ऊपर क्रोध करते हैं।

टिप्पणी—देवताध्यारोपणप्रतारणासम्भूतसम्भावना—(विष्णु आदि) देवता के आरोप रूप वंचना से उत्पन्न देवत्व का ज्ञान या निश्चय। देवतायाः अध्यारोपणम् (ष० त०) तदेव प्रतारणा (मयूरव्यंसकादित्वात् स०) तया सम्भूता (तृ० त०) तथाविधा सम्भावना—(कर्म० स०)। प्रतारणा—प्र√तॄ+णिच्—युच्—अन, टाप्। सम्भावना—सम्√भू+णिच्+युच्—अन. टाप्। **अन्तः प्रविष्टापरभुजद्वयम्**— जिनके भीतर दो अन्य भुजायें प्रविष्ट हो गई हैं ऐसी। भुजयोः द्वयम् (ष० त०) अपरंच तत् भुजद्वयम् (कर्म० स०) अन्तः प्रविष्टम् (स० त०) अन्तः प्रविष्टम् अपरभुजद्वयं यस्य तत् (ब० स०) यहाँ बाहुयुगल के अन्तः प्रवेश को संभावना की गई है, अतएव क्रियोत्प्रेक्षा अलंकार है। उससे राजा का अपना विष्णुत्व ध्वनित होता है, अतः अलंकार से वस्तुध्वनि है। इसके अतिरिक्त 'भुजद्वयम्' और 'बाहुयुगलम्' इन समानार्थक पर्याय-शब्दों के प्रयोग से उत्पन्न भग्नप्रक्रमता दोष का निराकरण 'आत्मबाहुयुगलमन्तः प्रविष्टद्वयमिव' इस पाठ से संभव है। 'त्वगन्तरित......' इस वाक्य से व्यम्बकत्व को ध्वनि निकल रही है। अतएव वस्तु से वस्तुध्वनि है। 'दर्शनप्रदानमपि' से लेकर 'स्पर्शमपि...' तक के प्रत्येक वाक्य में प्रायः प्रतीयमानोत्प्रेक्षा अलंकार है। **अभिवादनार्हान्**—चरण-स्पर्श करने के योग्य। 'पादग्रहणाभिवादनम्' इत्यमरः। **अनर्थकायासान्तरितविषयोपभोगसुखम्**—जिसने निष्फल परिश्रम से विषयों के उपभोग का सुख दूर कर दिया है उसको। विषयाणाम् उपयोगः (ष०त०) तस्य सुखम् (ष० त०) अनर्थकः आयासः (कर्म० स०) अनर्थकायासेन अन्तरितं विषयोपभोगसुखं येन सः (ब०स०) तम्। **जरावैक्लव्यप्रलपितम्**—वृद्धावस्थाजन्य विकलता से उत्पन्न अनर्थक वचन। 'सचिवोपदेशाय' और 'हितवादिने' में 'क्रुध-द्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः' सूत्र से चतुर्थी हुई है। हितं वदितुं शीलमस्य इति हित√वद्+णिनि=हितवादिन्। तस्मै।

सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति, तं पार्श्वे कुर्वन्ति, तं संवर्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति, तं मित्रतामुपनयन्ति,[1] तस्य वचनं शृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति, तं बहु मन्यन्ते, तमाप्ततामापादयन्ति[2] योऽहर्निशमनवरतमुपरचिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्तव्यः स्तौति, यो वा माहात्म्यमुद्भावयति । किं वा तेषां साम्प्रतम्[3], येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्, अभिचारक्रियाक्रूरैकप्रकृतयः पुरोधसो गुरवः पराभिसन्धानपरा मन्त्रिण उपदेष्टारः, नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायां लक्ष्म्यासक्तिः मारणात्मकेषु शास्त्रेषु[4] अभियोगः, सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ता भ्रातर उच्छेद्याः ।

संस्कृत टीका—तं—जनं, सर्वथा—सर्वप्रकारेण अभिनन्दन्ति—प्रशंसन्ति, तं—जनम्, आलपन्ति—सम्भाषन्ते, तं, पार्श्वे—निकटे, कुर्वन्ति—विदधति रक्षन्तीत्यर्थः, तं, सवर्धयन्ति—वृद्धिं प्रापयन्ति, तेन—जनेन, सह—साकं, सुखं—सुखपूर्वकम्, अवतिष्ठन्ते—अवस्थानं कुर्वन्ति, तस्मै—जनाय, ददति—यच्छन्ति, तं, मित्रतां—सख्यम्, उपनयन्ति—प्रापयन्ति, तस्य—जनस्य, वचनं—वचः, शृण्वन्ति, आकर्णयन्ति, तत्र-तस्मिन् जने, वर्षन्ति—भूयो भूयः धनप्रदानं कुर्वन्ति, तं, बहु—अधिकं, मन्यन्ते—आद्रियन्ते, तम्, आप्तताम्—विश्वस्तताम्, आपादयन्ति—प्रापयन्ति, यः—जनः, विगतान्यकर्तव्यः—विगतं दूरीभूतम् अन्यकर्तव्यम्—अस्यविधेयं यस्य स तथोक्तः, अहर्निशम्—रात्रिन्दिवम्, अनवरतम् निरन्तरम् उपरचिताञ्जलिः—बद्धकरपुटः अधिदैवतमिव—इष्टदेवतामिव, स्तौति-स्तुतिं कुर्वन्ति, वा—अथवा, यः—जनः, माहात्म्यम्—महिमानम्, उद्भावयति—

(१) तस्य मन्त्रिनाम्, तं मित्रतामुपजनयन्ति । (२) तमात्मनापादयन्ति, अस्मादिबभ्यति । (३) असाम्प्रतम् । (४) शस्त्रेषु ।

आविष्करोति। वा—अथवा, तेषां—राज्ञां, किं, साम्प्रतं—युक्तम्, येषां—राज्ञाम्, अतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणम्—अतिनृशंसप्रायेण अतिशयनिष्ठुरप्रायेण उपदेशेन शिक्षणेन निर्घृणं निर्दयम्, कौटिल्यशास्त्रं—चाणक्यरचितनीतिशास्त्रं प्रमाणम्, अभिचारक्रियाक्रूरैक प्रकृतयः—अभिचारक्रियया मारणोच्चाटनाद्यनुष्ठानेन क्रूरा नृशंसा एका मुख्याः प्रकृतयः स्वभावाः येषां ते तथोक्ताः, पुरोधसः—पुरोहिताः, गुरवः—आचार्याः, पराभिसन्धानपराः—परेषाम् अन्येषाम् अभिसन्धानं वञ्चनं तत्र पराः परायणाः, मन्त्रिणः—सचिवाः, उपदेष्टारः—शिक्षादायकाः, नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायां—नरपतीनां यत् सहस्रं तेन पूर्वं भुक्ता उपभोगविषयीकृता पश्चात् उज्झिता त्यक्ता एवंविधायां, लक्ष्म्यां श्रियाम्, आसक्तिः—प्रेमाधिक्यम्, मारणात्मकेषु—मारणं वधः तदेव आत्मा स्वरूपं येषां तथा विधेषु, शास्त्रेषु—योगनीतन्त्रादिषु, अभियोगः—अभिनिवेशः, सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ताः—सहजं स्वाभाविकं यत् प्रेम स्नेहः तेन आर्द्रं द्रवीभूतं हृदयं चेतः तेन अनुरक्ता अनुरागयुक्ताः भ्रातरः—सहोदराः, उच्छेद्याः—उन्मूलनीयाः ।

हिन्दी अनुवाद—(वे राजा लोग) उस (व्यक्ति) की सब तरह से प्रशंसा करते हैं, उसके साथ बातचीत करते हैं, उसे बगल में रखते हैं, उसे बढ़ाते हैं, उसके साथ सुखपूर्वक बैठते हैं, उसे देते हैं, उससे मित्रता करते हैं, उसकी बात सुनते हैं, उसपर (धन की) वर्षा करते हैं, उसको बहुत मानते हैं और उसका विश्वास करते हैं, जो अन्य कर्तव्य को छोड़कर दिनरात लगातार हाथ जोड़े हुए, इष्टदेवता की तरह स्तुति करता है अथवा जो (उन राजाओं की) महिमा को प्रकट करता है। अथवा उन (राजाओं) का कौन (कार्य) उचित या न्यायसंगत है ? जिनका अत्यन्त नृशंसतापूर्ण उपदेश के कारण दया-शून्य चाणक्य-नीति-शास्त्र प्रमाण है, अभिचार-क्रिया (मारण, उच्चाटन आदि के प्रयोग) से नितान्त क्रूर प्रकृति वाले पुरोहित (जिनके) गुरु हैं, दूसरे को धोखा देने में लगे रहने वाले मंत्री (जिनके) उपदेशक हैं, हजारों राजाओं द्वारा उपभोग करके त्यागी हुई लक्ष्मी में (जिनकी) आसक्ति है, मारणात्मक (अर्थात् मारण के उपदेशों से भरे) शास्त्रों में (जिनका) व्यसन है और स्वाभाविक स्नेह से द्रवीभूत हृदय से अनुराग करने वाले (सगे) भाई (जिनके) समूल नष्ट करने योग्य हैं।

टिप्पणी—तं मित्रताम्—यहाँ 'अकथितं च' सूत्र से द्विकर्मक नी धातु के योग में कर्मसंज्ञा—द्वितीया हुई । द्विकर्मक धातुओं का परिगणन इस प्रकार है—'दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम् । कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम् ॥' **यः प्रहर्निशम्**......यहाँ 'यत्' शब्द से युक्त उद्देश्यसूचक वाक्यों का पाठ पीछे किया गया है जब कि 'तत्' शब्द से युक्त विधेयसूचक वाक्यों का पाठ पहले हो गया है, अतएव विधेयाविमर्श दोष उपस्थित होता है । इसकी निराकारण करने के लिए यच्छब्दान्वित वाक्यों का पाठ पहले अवश्य कर लेना चाहिए । **साम्प्रतम्**—युक्त, उचित । 'युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने' इत्यमरः । **अतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घृणम्**—नितान्त क्रूरतायुक्त उपदेशों से भरपूर होने के कारण निर्दय । अत्यन्तः नृशंसः अतिनृशंसः (प्रा० स०) अतिनृशंसेन प्रायः= तुल्यः अतिनृशंसप्रायः (तृ० त०) स चासौ उपदेशः (कर्म० स०) तेन निर्घृणम् (सुप्सुपा स०) । **अभिचारक्रियाक्रूरैकप्रकृतयः**—अभिचारक्रिया (श्येनयाग आदि वैदिक कर्मानुष्ठान से या तंत्रोक्त विधि से मारण आदि प्रयोग की क्रिया) करते-करते जिनकी प्रकृति अत्यंत क्रूर हो गई है वे । एकाः प्रकृतयः (कर्म० स०) अभिचारस्य क्रिया (ष० त०) तया क्रूराः (तृ० त०) अभिचारक्रियाक्रूराः एक-प्रकृतयः येषाम् ते (ब० स०) । **नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायाम्**—हजारों राजाओं से उपभुक्त एवम् त्यक्त । नरपतीनां सहस्राणि (ष० त०) पूर्वम् भुक्ता पश्चात् उज्झिता इति भुक्तोज्झिता 'पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाधिकरणेन' इति सूत्रेण (कर्म० स०) नरपतिसहस्रैः भुक्तोज्झिता (सुप्सुपा स०) । **सहज-प्रेमार्द्रहृदयानुरक्ताः**—स्वाभाविक स्नेहवश सदय चित्त से अनुरक्त होने वाले । सहजं प्रेम (कर्म० स०) तेन आर्द्रम् (सुप्सुपा स०) तथाभूतं हृदयम् (कर्म० स०) तेन अनुरक्ताः (सुप्सुपा स०) । **उच्छेद्याः**—उन्मूलन करने योग्य । उद् √छिद्+ण्यत् । 'येषामतिनृशंस......' इस वाक्य में वैसे राजाओं के सभी कार्यों की अयुक्तता निरूपण रूप कार्य के प्रति अनेक हेतुओं का उपन्यास होने से समुच्चय अलंकार है ।

तदेवंप्रायातिकुटिल-कष्ट-चेष्टा-सहस्र-दारुणे[1] राज्यतन्त्रे,

---

(१) एवंप्राये......कुटिलकुचेष्टा, कुटिलचेष्टा......।

अस्मिन् महामोहान्धकारिणि[1] च यौवने, कुमार ! तथा[2] प्रयतेथाः यथा[3] नोपहस्यसे जनैः,[4] न निन्द्यसे साधुभिः, न धिक्क्रियसे गुरुभिः, नोपालभ्यसे[5] सुहृद्भिः, न शोच्यसे विद्वद्भिः। यथा च न प्रकाश्यसे[6] विटैः, न प्रहस्यसे[7] कुशलैः, नास्वाद्यसे भुजङ्गैः, नावलुप्यसे सेवकवृकैः, न वञ्च्यसे धूर्त्तैः, न प्रलोभ्यसे वनिताभिः,[8] न विडम्ब्यसे लक्ष्म्या, न नर्त्यसे मदेन, नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन, नाक्षिप्यसे विषयैः, नावकृष्यसे[9] रागेण[10], नापह्रियसे[11] सुखेन। कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः, पित्रा च महता प्रयत्नेन[12] समारोपितसंस्कारः, तरलहृदयमप्रतिबुद्धञ्च मदयन्ति धनानि, तथापि भवद्गुणसन्तोषो मामेवं[13] मुखरीकृतवान्।

संस्कृत टीका—तत्—तस्माद्धेतोः, एवंप्रायातिकुटिलकष्टचेष्टासहस्र दारुणे—एवंप्राये पूर्वोक्तस्वरूपबहुले अतिकुटिलेन अतिवक्रेण कष्टेन क्लेश करेण चेष्टासहस्रेण चेष्टानां सहस्रं तेन दारुणे भीषणे, राज्यतन्त्रे—राज्यस्य शासनस्य तन्त्रे इतिकर्तव्यतायाम् शासनव्यापार इत्यर्थः, च—पुनः, अस्मिन्—अनुभूयमाने, महामोहान्धकारिणि—महामोहेन महता अविवेकेन अन्धं कर्तव्यज्ञानशून्यं कर्तुं शीलं यस्य तस्मिन् तथाविधे, यौवने—तारुण्ये, कुमार—हे चन्द्रापीड ! तथा—तेन प्रकारेण, प्रयतेथाः—(वर्तितुं) प्रयत्नं कुर्वीथाः, यथा—येन प्रकारेण, जनैः—लोकैः, (त्वम्) नोपहस्यसे—न उपहासविषयीक्रियसे, साधुभिः—सत्पुरुषैः, न निन्द्यसे—न निन्दाविषयीक्रियसे, गुरुभिः—आचार्यैः, न धिक्क्रियसे

(१) महामोहकारिणि। (२) तथा तथा। (३) यथा यथा। (४) जनेन। (५) उपलभ्यसे। (६) प्रतार्यसे। (७) प्रतार्यसे। (८) सर्ववनिताभिः। (९) विकृष्यसे, रज्यसे, आकृष्यसे। (१०) रागैः। (११) उपह्रियसे। (१२) महता प्रयत्नेन इति क्वचिन्न विद्यते। (१३) एव।

—न धिक्कारविषयीक्रियसे, सुहृद्भिः—बान्धवैः, नोपालभ्यसे—न उपालम्भविषयीक्रियसे, विद्वद्भिः—पण्डितैः, न शोच्यसे—न शोकविषयीक्रियसे। च—किञ्च, यथा—येन प्रकारेण, विटैः—कामुकजनैः, न प्रकाश्यसे—(जनसमाजे स्वतुल्यत्वेन) न प्रकटीक्रियसे, कुशलैः—दक्षैः, न प्रहस्यसे—न प्रहासविषयीक्रियसे, भुजङ्गैः—षिड्गैः वेश्यासंगिभिरित्यर्थः, न ग्रास्वाद्यसे—न उपभुज्यसे, सेवकवृकैः—सेवकाः अनुचराः एव वृकाः ईहामृगाः तैः, न अवलुप्यसे—न अवलुण्ठ्यसे धूर्तैः—शठैः, न वञ्च्यसे—न प्रतार्यसे, वनिताभिः—कामिनीभिः, न प्रलोभ्यसे—न प्रलोभनाविषयीक्रियसे, लक्ष्म्या—श्रिया, न विडम्ब्यसे—न विडम्बनाविषयीक्रियसे न परित्यज्यसे इत्यर्थः, मदेन—गर्वेण, न नर्त्यसे—न नृत्यं कार्यसे, मदनेन कामेन, न उन्मत्तीक्रियसे—न प्रमत्ततामापाद्यसे, विषयैः—इन्द्रियार्थैः, न आक्षिप्यसे—न प्रेर्यसे चञ्चलीक्रियसे, रागेण—स्नेहादिना, न अवकृष्यसे—न आकृष्यसे, सुखेन—आनन्देन, न अपह्रियसे—न परित्यज्यसे। कामं—पर्याप्तं, भवान्—त्वं, प्रकृत्यैव—स्वभावेनैव, धीरः—धैर्ययुक्तः, च—पुनः, पित्रा—तातेन, महता प्रयत्नेन—अत्यन्तप्रयासेन, समारोपितसंस्कारः—समारोपितः (शिक्षाद्वारेण) विहितः संस्कारः बुद्धिविवेकपरिष्कारः यस्मिन् स तादृशः, (असि), धनानि—सम्पदः, तरलहृदयम्—चञ्चलमानसम्, अप्रतिबुद्धञ्च—बोधरहितञ्च, (जनम्) मदयन्ति—उन्मत्तं कुर्वन्ति, तथापि—अनुपदेश्यत्वेऽपि, भवद्गुणसन्तोषः—भवतः तव गुणैः शौर्यादिभिः सन्तोषः तुष्टिः, माम्—शुकनासम्, एवम्—उक्तप्रकारेण, मुखरीकृतवान् वादितवान्।

हिन्दी अनुवाद—इसलिए, हे चन्द्रापीड! ऐसी हजारों अत्यंत कुटिल एवं कष्टदायक चेष्टाओं से भयंकर शासन-तन्त्र (राज-काज) में और भारी मोह के कारण विवेकहीन बनाने वाले इस यौवन में ऐसा प्रयत्न करो जिससे लोग तुम्हारा उपहास न करें, सज्जन पुरुष निन्दा न करें, गुरुजन धिक्कार न दें, मित्रगण उलाहना न दें, पण्डितवृन्द सोच न करें, कामुकजन प्रकाशित न करें (अर्थात् अपने समान न बतावें), चतुर लोग हँसी न उड़ावें, वेश्या के साथी लोग आस्वादन (अर्थात् तुम्हारी संपत्ति का उपभोग) न करें, नौकर रूपी भेड़िये (धन) लेकर भाग न जायें, धूर्त्त लोग ठग न लें, कामिनियाँ लुभा न लें, लक्ष्मी

निकल न जाय, अभिमान नाच न नचावे, कामदेव उन्मत्त न बनावे, विषय विक्षिप्त न कर दे, राग खींच न ले और आनन्द छोड़ न दे। यद्यपि तुम स्वभाव से ही पूर्ण वीर हो, पिता ने महान् प्रयत्न से तुममें संस्कार डाला है (अर्थात् तुम्हें सभी विषयों का ज्ञाता बनाया है) और धन चंचल चित्तवाले एवं बोध-शून्य व्यक्ति को ही उन्मत्त बनाते हैं तो भी तुम्हारे गुणों से उत्पन्न सन्तोष ने मुझे इस प्रकार मुखरित किया (अर्थात् मुझसे इतना कहलाया; वस्तुतः तुम्हारे जैसे विज्ञ व्यक्ति से इतना कहने की आवश्यकता नहीं थी)।

टिप्पणी—एवंप्रायातिकुटिलकष्टचेष्टासहस्रदारुणे—इस प्रकार सहस्रों नितान्त कुटिल एवं कष्टप्रद व्यापारों से भयानक। अतिकुटिलाश्च कष्टाश्च (द्व० स०) अतिकुटिलकष्टाः चेष्टाः (कर्म० स०) एवंप्रायाः अतिकुटिलकष्ट-चेष्टाः (कर्म० स०) तासां सहस्राणि (ष० त०) तैः दारुणम् (सुप्सुपा स०) तस्मिन्। **महामोहान्धकारिणि**—विषयवासना रूप अज्ञान के कारण विवेकशून्य करने वाले। महान् मोहः (कर्म० स०), अन्धं कर्तुं शीलं यस्य इति विग्रह अन्ध√कृ+णिनि—अन्धकारि, महामोहेन अन्धकारि (सुप्सुपा स०) तस्मिन्। **प्रयतेथाः**—प्रयत्न करो। प्र√यत्+विधिलिङ—थास्। **नावलुप्यसे**—न लूट लिये जाओ। **सेवकवृकैः**—सेवक रूपी भेड़ियों से। सेवकाः एव वृकाः (मयूर-व्यंसकादित्वात् स०) तैः। यहाँ निरंगकेवलरूपक अलंकार है। भाव यह है कि जिस प्रकार भेड़िया छिपकर अपना शिकार करता है उसी तरह धूर्त लोग सेवक के रूप में छिपकर कहीं तुम्हारे धन का अपहरण न कर लें। **समारोपित-संस्कारः**—जिसमें संकारों का स्थापन किया गया है वह। समारोपित—सम्-आ√रुह्+णिच्+क्त 'रुहः पोऽन्यतरस्याम्' इति सूत्रेण हस्य पः। समारोपितः संस्कारः यस्मिन् सः (ब० स०)। **मुखरीकृतवान्**—वाचाल बनाया, बोलाया। शब्दायमानं मुखम् अस्ति अस्य इति मुखरः मुख+र 'प्रकरणे समुखकुञ्जेभ्य उपसंख्यानम्' इति वार्तिकेन, न मुखरः अमुखरः (न० त०) अमुखरः मुखरः कृतः इति मुखरीकृतवान्; मुखर+च्वि, इत्व, दीर्घ√कृ+ क्तवतु।

इदमेव च पुनः पुनरभिधीयसे—विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं

दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीरिति सर्वथा कल्याणैः, पित्रा क्रियमाणमनुभवतु भवान् नवयौव[1]राज्याभिषेकमङ्गलम्[2], कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढां धुरम्, अवनमय द्विषतां शिरांसि, उन्नमय बन्धुवर्गम्[3] अभिषेकानन्तरञ्च प्रारब्ध-दिग्विजयः परिभ्रमन् विजितामपि तव[4] पित्रा सप्तद्वीप-भूषणां[5] पुनर्विजयस्व वसुन्धराम् । अयञ्च ते कालः प्रताप-मारोपयितुम् । आरूढप्रतापो हि[6] राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति' इत्येतावदभिधायोपशशाम ।

संस्कृत टीका—इदमेव च—एतदेव च, पुनः पुनः—वारंवारम्, अभि-धीयसे—कथ्यसे, (यत्) इयं—वर्णाविषयीभूता, दुर्विनीता—दुःशीला, लक्ष्मीः—श्रीः, विद्वांसमपि—पण्डितमपि, सचेतनमपि—ज्ञानयुक्तमपि, महासत्त्वमपि—अत्यन्तशक्तिशालिनमपि, अभिजातमपि—कुलीनमपि, धीरमपि—धैर्यवन्तमपि, प्रयत्नवन्तमपि—उद्योगशीलमपि, पुरुषं—नरं, खलीकरोति—दुष्टं विदधाति । भवान्—त्वम्, सर्वथा—सर्वप्रकारेण, कल्याणैः—मङ्गलैः, पित्रा—जनकेन, क्रियमाणं—विधीयमानं, नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलं—नवः नवीनः यः यौवराज्ये युवराजपदे अभिषेकः अभिषेचनम् स एव मङ्गलं भद्रं तत्, पूर्वपुरुषैः—पूर्वजैः, ऊढां—धृतां, कुलक्रमागतां—वंशपरम्परया समायातां, धुरं—राज्यभारम्, उद्वह—उद्वहनं कुरु, द्विषतां—शत्रूणां, शिरांसि—शीर्षाणि, अवनमय—नम्राणि कुरु, बन्धुवर्गं—स्वजनसमूहम्, उन्नमय—उन्नतं विधेहि । अभिषेकानन्तरं च—यौवराज्याभिषेकादनु च, प्रारब्धादिग्विजयः—प्रारब्धः प्रस्तुतः दिग्विजयः दिशाजयः येन सः तथाभूतः, परिभ्रमन्—पर्यटन्, सप्तद्वीप-भूषणां—सप्तसंख्यका द्वीपा जम्बूप्रभृतयो भूषणम् अलंकारो यस्या एवंविधां, तव—भवतः, पित्रा—तातेन तारापीडेनेत्यर्थः, विजितामपि—स्वायत्तीकृतामपि, वसुन्धरां—पृथिवीं, पुनः—भूयः, विजयस्व—स्वाधीनीकुरु । प्रतापं—तेजः,

---

(१) नवयौवन......। (२) अनेकमङ्गलम् । (३) स्वबन्धुवर्गम् । (४) भवत् । (५) सप्तद्वीपसमुद्रभूषणां । (६) क्वचित् 'हि' इति पद नास्ति ।

आरोपयितुं—प्रवर्तयितुं दर्शयितुमित्यर्थः, ते—तव, अयं, कालः—समयः। हि—यतः, आरूढप्रतापः—प्रकटितशक्तिः, राजा—भूपतिः, त्रैलोक्यदर्शी इव —त्रिलोकीद्रष्टा योगी इव, सिद्धादेशः—सिद्धः निष्पन्नः आदेशः निदेशः यस्य स तादृशः भवति—जायते इति एतावत्—एतत्पर्यन्तम्, अभिधाय —उक्त्वा, उपशशाम—तूष्णीम्बभूव शुकनाश इति शेषः।

हिन्दी अनुवाद—यही तुम से बार-बार कहना है कि यह दुराचारिणी लक्ष्मी विद्वान्, विवेकी, महापराक्रमी, कुलीन, वीर और प्रयत्नशील पुरुष को भी दुर्जन बना देती है। (अब) आप सब प्रकार के कल्याणों के साथ पिता के द्वारा किये जाने वाले नवीन यौवराज्याभिषेक रूपी मंगल का अनुभव करें, कुल-परम्परा से आये हुए और पूर्वजों द्वारा धारण किये गये धुंरा (राज्य-भार) को वहन करें, शत्रुओं के मस्तकों को अवनत करें, स्वजनों को उन्नत करें और अभिषेक के बाद दिग्विजय प्रारम्भ करके परिभ्रमण करते हुए, पिता द्वारा जीती हुई सातों द्वीप रूप आभूषण वाली पृथ्वी को फिर जीतें। यह आपका प्रताप स्थापित करने (या फैलाने) का समय है। क्योंकि प्रताप की स्थापना (या विस्तार) करने वाला राजा त्रैलोक्यदर्शी (योगीश्वर) की भाँति सिद्धादेश (अव्याहत आज्ञा वाला) होता है इतना कहकर (शुकनास) चुप हो गया।

टिप्पणी—अभिधीयसे—कहे जाते हो। अभि√धा+लट् कर्मणि। **खलीकरोति**—दुष्ट या शठ बना देती है। न खलः अखलः (न० त०) अखलं खलं करोति इति खल+च्वि, इत्व, दीर्घ√कृ+लट्—ति। **नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम्**—नवीन युवराज के पद पर किया जाने वाला अभिषेक रूप मंगल। यौवराज्याभिषेक—राज्य के उत्तराधिकारी राजकुमार का अभिषेक कर्म। युवा चासौ राजा युवराजः (कर्म० स०, समासान्तटच्) युवराजस्य भावः यौवराज्यम् युवराज +ष्यञ्। नवं च तत् यौवराज्यम् (कर्म० स०) तस्मिन् अभिषेकः (सुप्सुपा स०) स एव मङ्गलम् (मयूरव्यंसकादित्वात् स०), तत् अभिषेक—अभि√ सिच् +घञ्। **प्रारब्धदिग्विजयः**—जिसने दिग्विजय प्रारम्भ किया हो वह। प्रारब्धः दिग्विजयः येन सः (ब० स०)। प्र—आ√रभ्+क्त=प्रारब्ध। दिग्विजय—किसी राजा का दलबल के साथ भू-मंडल के अन्य समस्त राजाओं को घूम-घूम कर परास्त करना। दिशां दिक्षु वा विजयः दिग्विजयः (ष० त० वा स० त०)।

सप्तद्वीपभूषणाम्—सात द्वीप रूपी गहनों से युक्त। सप्त च ते द्वीपाः (कर्म० स०) सप्तद्वीपाः भूषनानि यस्याः सा (ब० स०) ताम्। विजयस्व—विजय करो। वि√जि+ लोट् 'विपराभ्यां जेः' इति सूत्रेणात्मनेपदत्वम्। त्रैलोक्यदर्शी—तीनों लोक को देखने वाला, योगीश्वर। त्रयाणां लोकानां समाहारः (द्विगु स०)। त्रिलोक्याः भावः त्रैलोक्यम्, त्रिलोकी+ष्यञ्। त्रैलोक्यं द्रष्टुं शीलमस्य इति त्रैलोक्य√दृश्+णिनि=त्रैलोक्यदर्शी। सिद्धादेशः—अप्रतिहत या सफल आदेश वाला। सिद्धः आदेशः यस्य सः (ब० स०)। अभिधाय—कहकर अभि√धा+क्त्वा—ल्यप्। उपशशाम—शान्त हो गया। उप√शम्+ लिट्—णल्।